आठ सेर चावल

[तामिल की बारह कहानियों का हिन्दी-रूपांतर]

लेखक

के० संतानम्

उप-राज्यपाल, विन्ध्य-प्रदेश

अनुवादक

महावीरप्रसाद अग्रवाल

सदस्य, साहित्य अकादमी

— :o: —

प्रकाशक

रामनारायणलाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रयाग

प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य २) सजिल्द
मूल्य २।।) सजिल्द (सम्पूर्ण कपड़ा)

मुद्रक—
मुंशी रमजान अली शाह
नेशनल प्रेस
प्रयाग

प्राक्कथन

सन् १६४० में जब मैं व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में जेल में था मैंने अवकाश के क्षणों में तामिल में कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। सबसे पहले ये 'कल्कि', 'कावेरी' आदि प्रमुख तामिल पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। उसके बाद इनमें से कुछ का अनुवाद बँगला और कन्नड़ में निकला। अंग्रेजी में इनका रूपान्तर स्वतः मैंने किया जो पिछले वर्ष 'लीडर' के साप्ताहिक संस्करणों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ और इनका हिन्दी अनुवाद 'भारत' में निकला। मुझे हर्ष है कि मेरी कुछ कहानियों का हिन्दी-रूपान्तर अब पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है।

●

जब से भारतीय भाषाओं में कहानियाँ लिखने का चलन चला है प्रेम-विषयक कहानियों का ही आधिक्य रहा है। कभी-कभी तो भारतीय लेखक पहले युवक-युवती का पाश्चात्य ढंग का स्वच्छंद प्रेम दिखलाकर अंत में उन्हें विवाह-सूत्र में आबद्ध दिखला देते हैं। मुझे यह बहुत अस्वाभाविक मालूम होता है क्योंकि हमारे देश में प्रेम का विकास पाणिग्रहण के उपरान्त आरम्भ होता है। अच्छा हो यदि हमारे नवयुवक लेखक भारतीय जीवन के इस सामान्य सत्य को ध्यान में रखकर ही प्रेम-प्रधान कहानियों की रचना करें।

मैंने अपनी रचनाओं में जान-बूझकर प्रेम के कथानकों को बचाया है। वास्तव में कहानियाँ लिखने में मेरा उद्देश्य यही दिखलाना रहा है कि प्रेम के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी साहित्यिक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं।

प्रस्तुत संग्रह में मेरी बारह कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। विषय की दृष्टि से इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध वर्तमान भारतीय समाज की व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्याओं से है। इस कोटि की कहानियों में मैंने जीवन के कुछ जटिल प्रश्नों के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया है, यत्र-तत्र उनके समाधान के संकेत भी दे दिए हैं, लेकिन अंतिम निर्णय विचारशील पाठक पर ही छोड़ा है। मेरी शेष रचनाएँ वास्तव में कल्पना-प्रसूत कहानियाँ न होकर मेरे स्वतंत्रता-संग्राम के स्वगत अनुभव हैं जिन्हें कहानी का टेकनीक दे दिया है। इस संग्रह की पहली कहानी 'आठ सेर चावल' मेरा एक संस्मरण ही है। सन् १९४३ में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की ओर से मुझे बंगाल के अकाल की वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा गया था। उस समय मैंने गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर दुर्भिक्ष का भीषण नर्तन देखा था। इस कहानी में उसी की एक झाँकी है।

राजनिवास, रीवा
वसन्तपंचमी, संवत् २०१०

के० संतानम्

• कहानी-क्रम

आठ सेर चावल ▸▸▸

सन् १६४३ की बात है। रात के १० बजे थे। पूर्णिमा की चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। प्रतिदिन की भाँति मनोरंजन चक्रवर्ती ने दैनिक समाचारपत्र समाप्त किया, और फिर वह अचानक विचार-मग्न हो गया। उसके कमरे के सामने पद्मा नदी समुद्रवत् लहरा रही थी और जहाँ तक दृष्टि जाती थी उसी का विस्तार दिखाई देता था। चन्द्रमा उसकी लहरों पर नृत्य कर रहा था। चक्रवर्ती की पत्नी सुलक्षणा दिन भर का घर का काम-काज खत्म करके उसके कमरे में आई, लेकिन वह इतना तल्लीन था कि उसको उसका आना भी न मालूम हुआ।

"अब और कौन सी नई मुसीबत आ गई जो इतने परेशान हो?"—पत्नी ने पूछा।

चक्रवर्ती ने चौंककर उसकी ओर देखा और मुस्कराकर बोला—"मैं पद्मा के जल से क्रीड़ा करती हुई चन्द्रिका के सौन्दर्य से भाव-मग्न हो गया था।"

सुलक्षणा अविश्वास की हँसी हँसती हुई बोली—"जी नहीं, आपके चेहरे से तो यह नहीं मालूम होता कि आप पूर्णचन्द्र के सौन्दर्य से विमुग्ध हो गए थे।"

चक्रवर्ती बोला—"अच्छा, यह मजाक छोड़ो; चलो कुछ देर नदी में नौका-विहार करें।"

इतना कहकर वह सुलक्षणा के हाथ में हाथ डालकर घर से बाहर निकल पड़ा।

सुलक्षणा ने आग्रह किया—"दयामयी अभी जाग रही है। चलो उसे भी साथ ले लें।"

लेकिन पतिदेव ने ऐसी मुद्रा बना ली जैसे मानो उन्होंने पत्नी की बात सुनी ही न हो। पत्नी को नौका में चढ़ाकर वह स्वयं भी सवार हो गया। थोड़ी देर तक दोनों शान्तिपूर्वक नौका चलाते रहे; फिर उन्होंने उसे किनारे लगाया और सुस्ताने लगे। जहाँ तक दृष्टि जाती थी नदी के सिवाय और कुछ न दिखाई पड़ता था। सरिता शान्त कलकल ध्वनि से बह रही थी। चन्द्र-किरणें जल-तरंगों से मिलकर ऐसा मनमोहक दृश्य उपस्थित कर रही थीं कि वे दोनों उसकी रमणीयता से आत्म-विभोर हो गए।

अचानक चक्रवर्ती बोला—"कालीपद मुकर्जी दयामयी से शादी करना चाहता है।"

यह सुनकर सुलक्षणा एकदम काँप गई जैसे मानो उस पर बिजली गिर पड़ी हो। उसके लिए प्रकृति का सौंदर्य और उसकी आत्मा का आनन्द क्षण-मात्र में विलीन हो गए। उसने विस्मय से कहा—"राम! राम! उसकी उम्र तो तुमसे भी ज्यादा है!"

"इससे क्या होता है?" अभी वह ४५ का ही है"—चक्रवर्ती ने कड़ाई से जवाब दिया।

सुलक्षणा दुःख से बोली—"उसकी पहली पत्नी मालिनी मेरी सगी सहेली थी। अभी उसे मरे हुए मुश्किल से तीन महीने हुए हैं।"

चक्रवर्ती ने उसे समझाते हुए कहा—"बेचारे को एक स्त्री चाहिए। बिना पत्नी के वह कैसे रह सकता है? उसके पास ८० बीघा अच्छी जमीन है और साथ ही १० हजार रुपए नकद। उसको अपनी लड़की ब्याहने के लिए सैकड़ों आदमी कोशिश में हैं, लेकिन उसे हमारी लड़की के सिवाय कोई दूसरी पसन्द नहीं।"

सुलक्षणा ने कुपित होकर उत्तर दिया—"तुम यह नहीं सोचते कि उसके तीन-तीन बच्चे हैं। हमारी दया अभी १६ वर्ष की भी नहीं है। क्या हमने उसे इसी तरह से घूर पर फेंकने के लिए इतने लाड़-प्यार से पालकर बड़ा किया है?"

इस पर चक्रवर्ती चिढ़कर बोला—"अच्छा ठीक है, अगर तुम्हें यह प्रस्ताव पसन्द नहीं तो मैं उससे कह दूँगा कि वह किसी दूसरी लड़की से शादी कर ले। तुम जानती हो, बंगाली के घर में तीन बच्चे कौन बहुत होते हैं। जरा अपनी हालत देखो। ७०) माहवार में हमें सात बच्चों और अपने दो जीवों का पालन-पोषण करना पड़ता है। बिना भारी दहेज के हम किसी योग्य प्रतिभा-शाली युवक के मिलने की कैसे आशा कर सकते हैं? हालांकि कालीपद जवान नहीं है, लेकिन कुछ बहुत बुड्ढा भी नहीं है। दयामयी ने तुम्हें हमारे बच्चों के पालन-पोषण में सहायता दी

है; उसके बच्चे भी उसे कोई भारी बोझ न मालूम पड़ेंगे। और चूँकि वह हमारे करीब ही रहेगी, हम भी उसकी मदद करते रहेंगे। उसके भाई-बहनों को भी बड़ी सहायता मिलती रहेगी।

इस तर्क का उसकी पत्नी पर प्रभाव पड़ा और कोई सीधा स्पष्ट उत्तर न देकर वह बोली—"जो कुछ भी हो, मेरी जिम्मेदारी तुम से ज्यादा तो नहीं है; लेकिन अभी मेरे दिल को तुम्हारा यह विचार अच्छा नहीं लगता। हम लोग इस मामले को जल्दी में न तय करें, इसमें कुछ रुकना ठीक होगा।"

दोनों मौन घर लौट आए। सुलक्षणा ने अपने सोने के कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द कर लीं। उसे चारु-चन्द्रिका से अचानक घृणा हो गई थी।

◀▶

दूसरे दिन तीसरे पहर जब माँ-बेटी अकेली थीं तब दयामयी ने पूछा—"माँ! क्या पिताजी मुझ से नाराज हैं? कल रात उन्होंने मुझे तुम्हारे साथ ले चलने से क्यों इन्कार कर दिया?"

माँ ने जवाब दिया—"तू कैसी पगली लड़की है! क्या तेरे पिताजी तुझ से कभी नाराज हुए हैं? वे मुझ से एकान्त में कुछ सलाह करना चाहते थे; इसीलिए तुझे साथ नहीं ले गए।"

"क्या कोई ऐसी बात थी जो मुझे न जाननी चाहिए?"—दया ने जिज्ञासा की।

इस पर सुलक्षणा कुछ हिचकिचाई; लेकिन फिर उसने निश्चय किया कि लड़की से बात छिपाने में कुछ फायदा नहीं और उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिये यह मौका भी ठीक है। इसलिए वह बोली—"दया, यह तेरी शादी की ही बात थी। कालीपद बाबू को तो तू जानती है न ?"

"अच्छा ! यह बात है !"—लड़की बात काटकर बोली।। "जब मैं बच्चों को दोपहर का खाना देकर अपनी नाव में घर लौटती हूँ तो दस दिन से कालीपद भी अपनी नाव में मेरे साथ-साथ लगा चला आता है। चूँकि वह पिताजी का दोस्त है, मैं उससे निस्संकोच बातें करती रहती हूँ। लेकिन अब मेरी समझ में आया कि वह मेरा पीछा क्यों करता है। माँ, तुमने क्या कहा ?"

"मैंने तो साफ-साफ कह दिया कि मुझे यह प्रस्ताव पसन्द नहीं। वैसे तुम्हारे पिताजी को भी यह रुचिकर नहीं, लेकिन तुम हमारे परिवार की दशा तो अच्छी तरह समझती हो। तुम्हारे पिताजी इस सोच-विचार में हैं कि क्या ऐसे प्रस्ताव को, जो बिना प्रयत्न के ही आया है, ठुकरा देना बुद्धिमानी होगी। इस विषय में तुम्हारा अपना क्या विचार है ?"

दयामयी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। वह किसी काम का बहाना करके किसी दूसरे कमरे में चली गई।

◀▶

मनोरंजन चक्रवर्ती के गाँव का नाम सुन्दरगंज था। यह ढाका जिले में था। यह पूरा का पूरा जिला एक तरह से जल की

एक श्वेत चादर से ढका प्रतीत होता था। जब गंगा नदी बंगाल में प्रवेश करती है तो उसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं। हुगली, जिसके तट पर कलकत्ता बसा है, उन्हीं में से एक है। लेकिन उनमें सबसे बड़ी है पद्मा। सामान्यतः यह एक मील से अधिक चौड़ी है और अनेक स्थानों पर इसकी चौड़ाई दो-तीन मील भी है। मेघना, जो ब्रह्मपुत्रा की एक शाखा है, इतनी ही बड़ी है और इसी के निकट बहती है। बाढ़ के दिनों में दोनों में बहुधा भारी प्रतिस्पर्द्धा रहती है। इन दोनों बड़ी धाराओं के मध्यवर्ती क्षेत्र में बसे हुए गाँवों को सदैव खतरा बना रहता है। हर साल कुछ स्थानों पर हजारों एकड़ जमीन पानी में डूब जाती है और कुछ में ऊपर उभर आती है। इस क्षेत्र में घरों की छतें और दीवारें टीन की बनती हैं। जब घर पानी में डूब जाते हैं तो टीन की चादरें हटा ली जाती हैं और फिर निकटतम सूखी भूमि पर नये मकान खड़े कर लिये जाते हैं।

यहाँ केवल धान और पटसन की खेती होती है। मुख्य बाढ़ के पहले ही खेत जोतकर धान के बीज फैला दिये जाते हैं। धान का पौधा पानी की सतह से ऊपर उगता रहता है। ऊँचाई में यह ७-८ फुट का हो जाता है। दिसम्बर के शुरू में जब बाढ़ समाप्त हो जाती है यह कटाई के लिये तैयार होता है। अनेक स्थानों पर धान काटकर नावों में भर लिया जाता है। चारा अकसर दाने की कटाई के एक महीने बाद काटा जाता है।

सुन्दरगंज गाँव और शहर के बीच का स्थान था। उसमें दो

हजार घर थे। लेकिन वे एक जगह घने बसे हुये न थे। पद्मा नदी के दोनों किनारों पर तीन मील तक फैले हुये थे। चार-चार, पाँच-पाँच घरों के बाद एक आरपार जाता हुआ नाला बहता था जो उन्हें दूसरों से अलग कर देता था। एक घर से दूसरे घर तक आने-जाने के लिये भी नौका ही एकमात्र साधन थी। छोटे-छोटे लड़के-लड़की इन नावों में अकेले घूमते हुये बड़े सुन्दर मालूम पड़ते थे।

मनोरंजन चक्रवर्ती एम० ए० था और स्थानीय हाई स्कूल में अध्यापक था। उसका वेतन ७०) मासिक था। उसके सात बच्चे थे। एक बंगाली परिवार के लिये यह कोई विशेष बड़ी संख्या न थी, फिर भी उसके लिये रोज की जिन्दगी चलाना एक मुसीबत थी। जब चावल एक रुपये का दस सेर बिकता था तो चक्रवर्ती को १) रोज का चावल खरीदना पड़ता था। जब फरवरी १६४३ में चावल का भाव ।) फी सेर हो गया तो उसकी पूरी तनख्वाह चावल के लिये भी काफी न थी। अप्रैल में भाव दो सेर का हो गया, और फिर मई में एक सेर। पिछले १० वर्षों में चक्रवर्ती के प्रॉवीडेंट फंड में ८००) इकट्ठे हो गये थे। उसने इस फंड से उधार लेना शुरू किया और वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। फिर उसने अपनी पत्नी का जेवर बेचकर एक महीना और गुजारा। जून में चावल किसी भाव न मिलता था। कुछ दिनों तक बच्चों को एक बार चावल और बाकी दिन चना तथा कन्द-मूल देकर रखा। वे रोजाना कमजोर होते जाते। खुद चक्रवर्ती में इतनी

ताकत न रह गई कि वह बच्चों को नाव में घर से एक मील दूर स्कूल ले जाता। स्कूल भी बहुत कुछ उजड़ गया। गरीब लड़के-लड़कियाँ अधिकाधिक संख्या में काल के गाल में जाने लगे। दुर्भिक्ष के दैत्य की क्षुधा बढ़ती ही जाती थी। पद्मा के पवित्र जल में शव ही शव तैरते दिखाई देते थे।

◂▸

अन्न के अभाव में दयामयी दुबली होती जाती थी। लेकिन उसे अपनी चिन्ता कभी न होती। अपने क्षीणकाय भाई-बहनों के कान्तिहीन नेत्र तथा उभरी हुई हड्डियाँ देखकर वह अवश्य भयभीत हो जाती थी। अपने माता-पिता के मुख पर घोर चिन्ता के चिन्ह देखकर वह विचलित हो गई। जून मास में एक रात उसके माता-पिता एक कमरे में फुसफुस करके कुछ बातचीत कर रहे थे। वह उनके पास जाकर बोली—"कृपया कालीपद मुकर्जी से मेरी शादी तुरन्त कर दीजिये।" माँ-बाप ने एक शब्द भी न निकाला। जब बिना बोले ही हृदय हृदय का भाव समझता हो तो फिर शब्दों का अपव्यय क्यों किया जाय?

एक सप्ताह में विवाह संपन्न हो गया और दयामयी कालीपद की गृह-स्वामिनी बन गई।

◂▸

अपने माता-पिता तथा भाई-बहन की रक्षा के उद्देश्य से दयामयी ने ऐसे व्यक्ति से विवाह किया जिसे वह चाहती न थी और उन बच्चों के पालन-पोषण का भार अपने सिर पर लिया

जिन्हें उसने जन्म न दिया था। लेकिन अपने नये घर में आने के कुछ ही दिन बाद उसमें एक विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। सबेरे से लेकर काफी रात तक भूखों मरते स्त्री-बच्चे उसके दरवाजे पर भीड़ लगाये रहते और आर्त्त-स्वर में पुकार करते "हे देवि ! तुम हमारी लक्ष्मी हो, दरिद्रों की शरण हो। तुम्हारा नाम ही दयामयी है। आज हमें कुछ भोजन दो, नहीं तो हमारे प्राण न रहेंगे।"

पहले वह दिन भर में चार-पाँच बार अधिक से अधिक चावल पकाकर बाँटती रही। लेकिन जब दिन प्रतिदिन माँगने वालों की भीड़ बढ़ती गई तो उसे कच्चा चावल ही बाँटना पड़ा।

कालीपद मुकर्जी उदार वृत्ति का व्यक्ति था। वह बहुत खुश था कि उसे दयामयी जैसी दानशीला पत्नी प्राप्त हुई। अकाल-पीड़ितों की सहायता वह जिस ढंग से कर रही थी उसे देखकर उसे हर्ष और गर्व होता था। लेकिन जब सैकड़ों गरीब आदमी प्रतिदिन उसके दरवाजे पर इकट्ठे होते रहे और दयामयी बेतादाद चावल बाँटती रही तो वह कुछ परेशान होने लगा। उसने सवा-सौ मन चावल इकट्ठा कर रखा था। लेकिन आखिर वह भी कितने दिन चल सकता था ? उसने एक दिन दयामयी को नरमी से झिड़का—"तुम जो पीड़ितों की उदार सहायता कर रही हो उससे मुझे हर्ष है। लेकिन एक बात याद रखो। अगले चार महीनों के लिये हमें भी अपने घर-खर्च के लिये कुछ चावल की जरूरत होगी। कुछ तुम्हें अपने माता-पिता के लिये भी सुरक्षित रखना चाहिये। क्या तुम्हें इन सब बातों का ध्यान है ?"

दयामयी को इससे किंचित् क्लेश हुआ। वह बोली—"जब तक मेरे द्वार पर एक भी भूखा रहेगा मैं स्वयं भोजन न करूँगी।"

कालीपद ने उसे शान्त करते हुये पूछा—"तुमने अपनी माँ को भी कुछ चावल भेजा है न?"

"हाँ, आठ सेर", उसने जवाब दिया।

"आठ सेर से उनका काम कैसे चलेगा? उन्हें हर हफ्ते कम-से-कम पन्द्रह सेर तो चाहिये", कालीपद ने कहा।

वह बिगड़कर बोली—"जब दूसरे भूखों मर रहे हैं तो हमारे माता-पिता को दिन-रात में एक बार भोजन करके ही संतुष्ट रहनां चाहिये। मैंने अपने पिता जी को साफ लिख दिया है कि अगली फसल के आने तक मैं उन्हें प्रति सप्ताह आठ सेर चावल भेज दिया करूँगी और उन्हें चाहिये कि वे इसे मेरा पर्याप्त मूल्य समझें।" यह कहते-कहते दुःख से उसका गला भर आया; वह सिसक-सिसक कर रोने लगी।

उस दिन से दयामयी का घर अकाल-पीड़ितों की सहायता का एक बड़ा केन्द्र बन गया। अनाथ बालक उसे अपना ही घर मानते थे। उस समय चावल कहीं किसी भी भाव को प्राप्त न था—न रुपया देकर और न प्रेम-भाव से ही। लेकिन जो कोई दयामयी के द्वार पर आता खाली हाथ न लौटता। कालीपद ने अपना सब संचित धन खर्च कर दिया। बड़ी-बड़ी कीमतें चुकाईं, लेकिन किसी तरह चांवल प्राप्त किया।

आखिर पहली दिसम्बर का दिन आया। दो सप्ताह में नई फसल का आना शुरू हो जायगा। काली माई की दया से फसल बहुत अच्छी मालूम होती थी। लेकिन निर्दय नियति अकसर दुखी को ही और सताती है, गिरे को ही दो लात लगाती है। अचानक मलेरिया का देशव्यापी प्रकोप हो गया। दयामयी कातर दृष्टि से देखती कि जिन बच्चों और गरीब आदमियों को दुर्भिक्ष के दैत्य से बचाने में उसने इतना घोर परिश्रम किया था, वही अब मक्खी-मच्छर की मौत मर रहे थे। उसने बीमारों को अपने मकान के एक हिस्से में लाकर बसा दिया और उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगी।

एक दिन कालीपद ने कातर स्वर में कहा—"चाहे मेरी सब धन-सम्पत्ति खर्च हो जाय, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। लेकिन अगर तुम भी इस महामारी का शिकार हो गईं तो मैं क्या करूंगा ?"

दयामयी ने उसकी आशंका पर कोई ध्यान न दिया। वह अपने को महामारी से मुक्त मानती थी। लेकिन एक दिन कालीपद को तेज बुखार हो आया। दयामयी घबरा गई। वह सोचने लगी कि अपने ही घमंड में चूर रहने से उसने अपने पति-देवता की बड़ी उपेक्षा की। वह फूट-फूट कर रोने लगी।

वह बार-बार सानुरोध प्रार्थना करती—"मेरे स्वामी! मुझे क्षमा करना।" लेकिन कालीपद सिर्फ मुस्करा देता और कहता—

"तुमने भूल ही क्या की है ? तुम्हारे पुण्य-दान के फल में मुझे भी हिस्सा मिलेगा। तुम्हारे ही द्वारा मुझे मुक्ति मिलेगी। मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि देवि दुर्गा ने तुम्हें अनाथों की सेवा के लिए स्वतंत्र बनाने का निश्चय कर लिया है।"

दूसरे दिन सवेरे कालीपद का स्वर्गवास हो गया।

◀◀◀

अग्निपरीक्षा ▸ ▸ ▸

रात के नौ बजे थे। जम्बूनाथ आराम से एक दैनिक पत्र पढ़ रहा था। उसने आठ बजे पढ़ना शुरू किया था और अभी वह तीसरे ही पन्ने तक पहुँचा था। उसकी लड़की और दोनों लड़के बड़ी दिलचस्पी से मैनचेस्टर के टेस्ट मैच की रेडियो-व्याख्या सुन रहे थे। छोटा लड़का गोपाल सिर्फ आठ साल का था। उसकी समझ में रेडियो-वार्ता तो न आ रही थी लेकिन जब कभी वह नायडू या निसार जैसा कोई नाम सुनता तो अपने भाई की कमीज की बाँह खींचकर पूछता—"बालू! उसने क्या कहा?" बालू इस बात से खीझ जाता और उसे पीटने के लिये हाथ उठाने लगता लेकिन उसकी बहन मनोरमा उसे यह कहकर रोक लेती—"वह अभी बच्चा है। अगर उसे समझा दोगे तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा?" असल में मनोरमा खुद समझना चाहती थी; लेकिन चूँकि वह आठवीं कक्षा में पढ़ती थी, इसलिये उसे यह कहने में संकोच होता था कि वह रेडियो-वार्ता स्वयं नहीं समझ पाती।

दिन भर का घर का काम-काज खत्म करके उनकी माँ वनजाक्षी कमरे में आई। वह थकान से चूर थी। अन्य सब को आनन्द

मनाते देखकर वह चिढ़ गई और लगी खीझकर चिल्लाने—"तुम लोगों के लिये कोई दूसरा काम ही नहीं रह गया ! जब देखो तब यही कमबख्त क्रिकेट ! तुम लोग बिगड़ते ही चले जा रहे हो। अगर छोकरे यह सब करें तो करें लेकिन कम से कम एक १२ साल की लड़की को तो कुछ अक्ल से काम लेना चाहिये।" यह कह कर वह धम से एक कुर्सी पर बैठ गई। बच्चे माँ की चिड़चिड़ाहट का मजा ले रहे थे, हंसी रोके न रुकती थी, लेकिन ज़ोर से हँसने की उनकी मजाल न थी। अपने-अपने मुँह में रूमाल ठूसकर उन्होंने उस ओर से गर्दन फेर ली।

जम्बूनाथ ने अखबार रख दिया और मुस्कराकर बोले—"क्यों, क्या तुम्हारा काम इतनी जल्दी खत्म हो गया ?" वनजाक्षी ने तड़ से जवाब दिया—"अगर मैं अपना काम ऐसे ही आराम-आराम से करूँ जैसे तुम अखबार पढ़ते हो तो वह सुबह तक भी खत्म न हो।"

इस पर जम्बूनाथ अपनी हँसी दबाकर घर-गृहस्थी की बातें करने लगे। वे जानते थे कि दस-पाँच मिनट शान्ति से बात कर लेने पर उसका मिजाज ठीक हो जायगा। दिन-भर के काम का यही उसका सच्चा पुरस्कार था।

जब वे इस तरह बातें कर रहे थे तो दरवाजे पर आहट हुई और तारवाले ने चिल्लाकर कहा—"तार"। सब लोग चौंक पड़े। बालू ने रेडियो बन्द कर दिया और तेजी से तार लाकर पिता जी के हाथ में दे दिया। जम्बूनाथ ने तार पढ़कर पत्नी की ओर बढ़ा

दिया। उसमें लिखा था—"आज सुबह सुन्दरी मर गई। शारदा को यहाँ से ले जाने का प्रबन्ध करो।"

पति-पत्नी एक दूसरे की तरफ देखने लगे लेकिन मुँह से एक शब्द भी न निकला। बालू तार की ओर देखता रहा और फिर धीरे से अपने भाई-बहन को सुलाने ले गया। कुछ देर तक तो बच्चे आपस में कानाफूसी करते रहे लेकिन जल्दी ही गहरी नींद सो गये।

◂▸

सुन्दरी जम्बूनाथ की अकेली बहन थी। बचपन में वे एक दूसरे को बहुत प्यार करते थे। जब जम्बूनाथ कॉलेज में पढ़ता था, उसके पिता गुजर गये। उस समय सुन्दरी १५ वर्ष की थी। जम्बूनाथ ने अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकांश बेचकर अपनी बहन का विवाह एक होनहार युवक से कर दिया। उसने हाल ही में डाक्टरी पास की थी। सलेम में उसने डाक्टरी की दुकान खोल दी और जल्दी ही उसकी प्रेक्टिस खूब जम गई। कॉलेज की पढ़ाई खत्म करने के बाद जम्बूनाथ को सेक्रेटरिएट में ८०) माहवार की एक अच्छी जगह मिल गई। उसकी शादी पिता के सामने ही हो गई थी। उसकी पत्नी वनजाक्षी भी उसके लिए भाग्यशालिनी सिद्ध हुई। दोनों परिवार खूब फले-फूले।

लेकिन देवता ईर्ष्यालु होते हैं और किसी आदमी की खुशी नहीं देख सकते। एक आपरेशन करते हुए सुन्दरी के पति के हाथ में चाकू लग गया, उसके खून में जहर फैल गया और दो दिन में

वह मर गया। उस समय शारदा दो वर्ष की थी। जम्बूनाथ और सुन्दरी शारदा को सलेम से मदरास ले आए। सुन्दरी अपनी विपत्ति से इतनी दुःखी थी कि उसे ६ महीने तो अपने तन-बदन का होश ही न रहा। लेकिन गहन से गहन शोक का भी अन्त होता है। उसे यह देखकर सन्तोष होता था कि उसकी छोटी-सी शारदा अपने ममेरे भाई-बहनों के साथ हिलमिलकर खेलती है और उसे स्वर्गीय पिता की याद जरा भी नहीं सताती। सुन्दरी अपनी बुड्ढी माँ की सेवा और भाई की सहायता करना चाहती थी।

लेकिन मुसीबतें कभी अकेली नहीं आतीं। पति की मृत्यु के बाद एक साल के भीतर ही सुन्दरी की माता का देहान्त हो गया। उसके बाद वह अपने भाई के साथ न रहना चाहती थी। शारदा को लेकर वह अपने पति के गाँव चली गई। जम्बूनाथ उसे १०) महीना भेजने लगे।

तीन साल के बाद सुन्दरी की मृत्यु के रूप में जम्बूनाथ पर फिर जो दुर्भाग्य की कालिमा छाई उससे वह चंचल हो उठा। वनजाक्षी को भी दुःख हुआ। वैसे वह सुन्दरी से कभी लड़ती न थी, लेकिन उनमें विशेष प्रेम-भाव भी न था; बल्कि पति के भगिनी-प्रेम पर उसे कुछ ईर्ष्या ही होती थी। कभी-कभी उसे पति का अपनी अल्प आय में से १०) सुन्दरी को भेजना भी अखरता था। कारण कुछ भी हो, लेकिन वनजाक्षी सुन्दरी के निधन से इतनी दुःखी नहीं हुई जितनी कि चिन्तित।

ज्योंही जम्बूनाथ शोक-समाचार के धक्के से सँभले, वनजाक्षी धीरे से बोली—"हम शारदा का क्या करेंगे ?"

जम्बूनाथ एक दम उबल पड़े—"तुम क्या बकती हो ? शारदा हमारे बच्चों के साथ क्यों न पले ?"

वनजाक्षी चुप हो गई।

जम्बूनाथ कुछ देर तो चुप रहे और फिर बोले—"तुम अपने मन की बात साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं ? आखिर तुम्हीं बताओ कि फिर शारदा का क्या हो ?"

वनजाक्षी ने दबी जबान से उत्तर दिया—"तुम्हें जो अच्छा लगे सो करो। मैं तो सिर्फ इस बात से चिन्तित हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि हम शारदा से बिलकुल अपने बच्चों के समान ही व्यवहार न कर सकें। अगर हमसे जरा भी भूल हुई तो लड़की हम लोगों से घृणा करने लगेगी। मैं तो यह सोचती हूँ कि क्या उसे बच्चों के बोर्डिंग में रख देना ज्यादा अच्छा न होगा ? अगर तुम्हें यह विचार पसन्द न हो तो मैं शारदा को अपने घर में रखने के लिए प्रसन्नता-पूर्वक तैयार हूँ।"

इससे जम्बूनाथ के दुःख में और भी कटुता आ गई। वह उसी रात को शारदा को लिवा लाने के लिए रवाना हो गये। जब उसकी माँ मरी तो शारदा ऐसा अनुभव करती थी मानो वह कहीं जंगल में खो गई हो। वह दो घंटे तक रोती रही और फिर रोते-रोते सो गई। सबेरे अपने मामा को अपनी चारपाई के

पास बैठा देखकर वह उछलकर उनकी गोद में जा बैठी। जब जम्बूनाथ रोने लगे तो वह भी रो पड़ी। अन्त्येष्टि-संस्कार के बाद जम्बूनाथ शारदा को मदरास ले आए।

◄►

शारदा के आगमन के कुछ ही दिनों में जम्बूनाथ का घर एक नवीन आलोक से उद्‌भासित हो उठा। कुछ दिनों तक तो शारदा उन्हें 'मामा' कहकर पुकारती रही लेकिन जब उसने देखा कि दूसरे बच्चे उन्हें 'पापा' कहते हैं तो वह भी वैसा ही करने लगी। वनजाची को वह पहिले दिन से ही 'माँ' पुकारने लगी थी। एक दिन जब एक पड़ोसी ने उससे पूछा—"कहो, तुम्हारी मामी क्या कर रही हैं?" तो उसको बड़ा अजीब-सा मालूम हुआ। वह दौड़ी-दौड़ी वनजाची के समीप पहुँची और बोली—"माँ! हमारे घर में मामी कौन है?" इस घटना पर कई दिन तक घर-भर में खूब हँसी होती रही।

शुरू में वनजाची यह सोचती रहती थी कि शारदा उसकी अपनी लड़की नहीं है। लेकिन जब वह प्रेम-भरी आँखों से उसकी ओर देखती और तोतली बोली में 'माँ' 'माँ' तुतलाती हुई प्यार से गोद में चढ़ जाती तो वनजाची के हर्ष का वारापार न रहता। जब जम्बूनाथ दफ्तर से लौटते तो सबसे पहिले शारदा को पुकारते और उसे कोई न कोई फूल या फल अवश्य देते। गोपाल को यह बात पसन्द न आती। उसे यह देखकर दुःख होता कि घर के सबसे छोटे बालक के रूप में उसका जो अधिकार था वह

अब छिन गया है। लेकिन जब शारदा उसकी कोई किताब उठाकर विनम्रता से कहती—"भैया! हमें तछवीरें दिखला दो," तो वह खुशी से नाच उठता। जब एक दिन शारदा को एक रेशमी पेटीकोट और ब्लाउज भेंट मिला तो मनोरमा को कुछ ईर्ष्या हुई लेकिन जब शारदा इन्हें पहिन कर खुशी-खुशी मनोरमा के पास आई और बोली—"जीजी, मैं इन्हें तुम्हाली छादी के दिन पहनूँगी औल तुम्हाले छाथ पालकी में बैठूँगी" तो मनोरमा को ऐसा लगा कि दुनिया में जितना भी रेशम मिले वह सब शारदा को दे डाले। रहो बालू की बात, सो वह तो शारदा को अपनी रक्षणीय धरोहर समझता था।

तीन वर्ष तक शारदा उद्यान की कोमल कली की तरह विकसित होती रही—नव-नव वर्ण एवं आभा से आलोकित। जब आने-जाने वाले शारदा के रूप-माधुर्य एवं बुद्धि-कौशल से प्रभावित होकर जम्बूनाथ और वनजाक्षी से कहते—"आपकी छोटी लड़की तो बड़ी विलक्षण है!" तो वे उनकी भूल सुधारने की चिन्ता न करते। वे यह नहीं चाहते थे कि लड़की व्यर्थ भ्रम में पड़े। आखिर, शारदा उनको अपने बच्चों से अधिक प्यारी थी ही! अगर दूसरे उसे उनकी पुत्री ही समझते हैं, तो इसमें हर्ज क्या?

◄►

एक दिन जब शारदा स्कूल से लौटी तो थकी-थकी सी मालूम होती थी। यह देखकर वनजाक्षी ने चिन्तित मुद्रा से पूछा—"क्यों बेटी! कैसी तबियत है?" शारदा ने उत्तर दिया—"माँ! सिर में दर्द

हो रहा है।" रात को उसे तेज बुखार हो आया। डाक्टर बुलाया गया। उसने कहा—"रोग भयानक है, लेकिन अगर बच्ची तीन दिन पार कर ले गई तो संभव है कि फिर खतरा न रहे।"

दूसरे दिन बुखार बराबर बढ़ता रहा। जम्बूनाथ दफ्तर तो गया लेकिन मन में बड़ी परेशानी रही। वनजाक्षी शारदा के पास ही बैठी रही। उसके मस्तिष्क में सब तरह की शंकायें उठने लगीं। वह कभी सोचती, शारदा इस प्रकार अचानक उनके यहाँ आई ही क्यों? लेकिन है वह कितनी भोली और प्यारी! उसने हम सब को जो मोह लिया है वह सब क्या आज हमारी परीक्षा लेने के लिये? उसने अपनी इष्टदेवि देवी परमेश्वरी से हृदय से प्रार्थना की—"हे देवि! किसी तरह तुम मेरी शारदा को अच्छा कर दो।"

उस रात पति-पत्नी दोनों मरीज के पास आराम कुर्सियाँ डालकर बैठे रहे। घंटे-घंटे भर बाद वे उसका टेम्परेचर लेते। लेकिन बुखार १०५° से नीचे न आता। वनजाक्षी थकी हुई थी; बैठे-बैठे कुर्सी पर ही उसे झपकी आ गई। आध घंटे बाद वह अचानक घबड़ाई हुई सी जागी और लगी चिल्लाने—"हे ईश्वर!" जम्बूनाथ ने उसे साधकर पूछा—"क्यों, क्या बात है? कैसे डर गईं?" उसकी आँखें एक पागल आदमी की तरह सूनी-सूनी सी लग रही थीं। जम्बूनाथ उसका हाथ पकड़कर धीरे से पास वाले कमरे में ले गये। वनजाक्षी के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। वह चिल्ला रही थी—"हाय! अब मैं क्या करूँ? हाय! अब मैं क्या करूँ? यह भार कैसे ढोऊँ?"

थोड़ी देर बाद जब वह कुछ शान्त हुई तो उसने अपने स्वप्न का हाल सुनाया—"मुझे देवी पार्वती ने दर्शन दिए हैं और कहा है 'अगर तुम बदले में अपने एक बच्चे को दे सको तो मैं शारदा को अच्छा कर दूँगी। सोच लो, मैं तुम्हें २४ घंटे का समय देती हूँ'।" यह सुनकर जम्बूनाथ दहल गये। उन्हें स्वप्नों में विश्वास न था लेकिन फिर भी वे भयभीत हो गये। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"कैसी पागलपन की बात है! वैसे हमने शारदा को अपने बच्चों से भी अधिक दुलार से पाला है लेकिन हमें क्या अधिकार है कि हम एक जान के लिए दूसरी का सौदा करें? भाग्य में जो होना होगा, वह होगा।"

इसके आगे वनजाक्षी ने कुछ न कहा। दूसरे दिन जैसे ही शाम हुई, उसकी मानसिक हलचल और बढ़ गई। वह किसी से एक शब्द भी न बोल पाती थी। पिछली रात की तरह उसे ठीक उसी समय फिर झपकी आने लगी। थोड़ी ही देर में वह गुर्राटे लेने लगी। जम्बूनाथ डर गये और अपने लड़के बालू को डाक्टर को बुलाने के लिए भेज दिया। लेकिन जब तक डाक्टर आवे, वनजाक्षी जागकर उठ बैठी। उसके मुख पर शान्ति और प्रसन्नता की आभा थी। उसने डाक्टर को अपनी नाड़ी न देखने दी और बोली—"मैं बिलकुल अच्छी हूँ। मुझे कुछ नहीं हुआ।"

◆

दूसरे दिन सबेरे शारदा का ज्वर उतरने लगा और तीन दिन में वह पहिले की तरह खेलने-कूदने लगी। सबके सिर से चिन्ता का भार

हटा। लेकिन वनजाक्षी की मुद्रा से मालूम होता था कि मानो वह किसी दूसरी ही दुनिया में हो। वैसे उसके मुख पर मुस्कराहट थी लेकिन आँखें आँसुओं से डबडबा रही थीं। अर्द्ध-रात्रि में जब सब सोते रहते तो वह धीरे-धीरे अपने सब बच्चों के पास जाती और हर एक को छू-छूकर देखती कि किसी को कुछ हो तो नहीं गया।

एक महीना बीत गया। जम्बूनाथ परेशान थे कि उनकी पत्नी का वह अजीब मानसिक रोग क्यों नहीं टलता। जब प्रतिदिन की तरह वह एक रात अपने सोने के कमरे में गई तो वे अचानक बोले—"अगर तुम्हारी यही दशा बनी रही तो फिर एक जान और जायगी। तुम साफ-साफ बतलाती क्यों नहीं कि तुम्हें क्या तकलीफ है? अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं कल ही शारदा को लड़कियों के हॉस्टिल में भेज दूँगा।"

यह सुनकर वनजाक्षी एक अभूतपूर्व ढंग से बड़े जोर से काफी देर तक हँसती रही। वह बोली—"मैं तुम्हारी बुद्धि की क्या तारीफ करूँ कि जिसने यह पता लगाया है कि मैं शारदा को यहाँ से हटा देना चाहती हूँ। मुझे आज तक तुमसे इस विषय में सत्य बात कहने का साहस ही नहीं हुआ। असल बात यह है कि पहिले दिन की ही तरह दूसरे दिन भी ठीक उसी तरह मैंने स्वप्न देखा और स्वप्न में मुझे देवी महेश्वरी ने दर्शन दिए। मैंने उनसे प्रार्थना की—'माँ! मैं तुम्हारे चरण छूती हूँ। तुम्हीं मेरी एक-मात्र रक्षक हो। अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम मेरे किसी भी बच्चे को ले सकती हो; लेकिन मेरी शारदा को अच्छा कर दो, मेरी यही भिक्षा है।' इसके बाद

फौरन मेरी नींद खुल गई। बाकी तुम खुद समझ सकते हो। अब मैं समझी कि महेश्वरी केवल मेरी परीक्षा ले रही थीं। अब तुम खुद देख सकते हो कि अपने किसी बच्चे को १० मास तक पेट में रखने में मैंने जो पीड़ा सहन की है उससे भी अधिक मूल्य मैंने शारदा के जीवन के लिए चुकाया है। इसलिए ऐसे व्यर्थ प्रस्ताव रखकर अब तुम मेरा अपमान न करो।"

प्रत्येक बालक की मुख-मुद्रा से आकर्षण की जो आलोकमयी किरणें विकीर्ण होती हैं उनका क्या रहस्य है? जिनका मन इस आकर्षण की चोट से विद्ध होता है उन पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है—हर्ष, विषाद या दोनों और अगर दोनों तो उनमें से कौन अधिक?

▶ ▶ ▶

सावित्री ▸▸▸

ज्योतिषी राजू शास्त्री ध्यान से एक जन्म-कुंडली देख रहा था। उसने एकाएक सामिनाथ शर्मा की ओर घूम कर प्रश्न किया—"अच्छा यह तो बताओ मित्र, क्या इस लड़के को वर बना सकने के लिए तुम बहुत परेशान हो ?"

"अवश्य !" सामिनाथ ने उत्तर दिया, "वह अच्छा लड़का है। डाक्टरी की अन्तिम वर्ष की परीक्षा में बैठ चुका है, सुन्दर है, और पास में सम्पत्ति भी है।"

राजू शास्त्री थमते हुए बोला—"ऐसी बात है तो मैं रास्ते में नहीं आना चाहता। परन्तु तुम्हारे समान घनिष्ठ मित्र से मुझे सत्य नहीं छिपाना चाहिये। जन्मपत्री के फल को सुनने के बाद तुम जो चाहो सो करो। साथ में मेरे अन्तरतम का आशीर्वाद भी है।"

"क्या बात है ? तुम तो घुमा-फिरा कर बातें कर रहे हो। मुझे सीधे तौर पर बतला दो। तब हमें क्या उचित होगा, इस पर बहस कर लेंगे," सामिनाथ ने कहा।

राजू बोला, "कुंडली के अनुसार उन्तीसवें वर्ष तक सावित्री का सौभाग्य अटल रहेगा।"

सामिनाथ दो मिनट तक सन्न रह गया। उसकी आँखों पर एक झीना पर्दा-सा खिंच आया। किन्तु उसने अपनी समस्त शक्ति बटोरते हुए पूछा, "क्या तुमने सुन्दरेश की कुंडली देख ली है ?"

"वह उतनी खराब नहीं है," राजू शास्त्री ने उत्तर दिया, "लम्बे जीवन की अच्छी सम्भावनाएँ हैं। तथापि उसकी कुंडली में भी उसी अवस्था में खतरा जान पड़ता है जब सावित्री उन्तीस वर्ष की होगी। तुम्हें अनावश्यक रूप से चिन्तित होने की जरूरत नहीं। चाहे जो भी उसे वरे, सावित्री के ग्रह बदले नहीं जा सकते। हो सकता है वह भी पुराणों की सावित्री के समान ही बड़भागिनी हो। तुम्हें तैयारियाँ शुरू कर देनी चाहिये। किसी अन्य ज्योतिषी को सावित्री की सच्ची कुंडली मत दिखलाना। मैं तुम्हें दूसरी बनाए देता हूँ। उसमें थोड़ा सा परिवर्तन होगा; तब कुंडली का साम्य पूरा बैठेगा।"

सावित्री अपने माता-पिता की अकेली सन्तान थी। उसे एक अच्छे पति से विवाहित और भावी चिन्ताओं से मुक्त, प्रसन्न देख सकना सामिनाथ के जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। राजू शास्त्री के ज्योतिष-ज्ञान पर उसका असीम विश्वास था। उसकी धारणा थी कि उससे बड़ा ज्योतिषी कोई नहीं है। अतः राजू शास्त्री की भविष्यवाणी पर उसे जरा-सा भी सन्देह नहीं था और किसी अन्य ज्योतिषी की राय लेना उसने ठीक नहीं समझा। उसे लगा कि भाग्य की अटल शक्ति के विरुद्ध रोना-गाना मूर्खता है।

उसने यह सोचकर अपने मन को दिलासा दिया कि जो खतरा

आने वाला है उसमें अभी चौदह वर्ष हैं। शायद इस लम्बे अरसे में पूजन-वन्दन से अशुभ ग्रहों को शान्त किया जा सके। उसका प्रथम धर्म यह था कि वह अपनी लड़की का विवाह ठीक व्यक्ति के साथ कर दे। बाकी जैसी ईश्वर की इच्छा हो। सामिनाथ के मन में उठते हुए इन सब विचारों को राजू शास्त्री भांप गया और कोमल स्वर में बोला—"बेकार में उत्तेजित मत होओ। प्रति शुक्रवार को नियमित रूप से हमारे नगर के महाविनायक की पूजा करो। सावित्री से कहो कि वह रोज भगवान के सहस्र नामों का जप करे और पार्वती की स्तुति करे। तुम्हारे जैसे भले और धर्मात्मा व्यक्ति का बुरा हो नहीं सकता।"

अपने मित्र के इन स्नेह-भरे आदेशों को सुनकर सामिनाथ की आँखों में आँसू भर आये।

शर्मा ने शास्त्री को धन्यवाद दिया और कहा—"तुम्हारे प्रेम और सहायता के लिए मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ? तुम एक और बात में मुझे अपने आशीर्वाद से सहायता दे सकते हो। मैं नहीं चाहता कि यह बात किसी को मालूम हो। यदि तुम मुझे वचन दे सको कि तुम इसको अपनी पत्नी से भी नहीं बतलाओगे तो मेरा मन स्थिर हो सकेगा।"

"चिन्ता मत करो", शास्त्री ने आश्वासन दिया। "क्या तुम सोचते हो मैं ऐसी बातें किसी से कहूँगा? सावित्री से कहना कि वह आज से हर संध्या को मेरे यहाँ आया करे। मैं उसका पवित्र

जल से अभिषेक करूँगा। सब तैयारियाँ शुरू करो और जितनी जल्दी हो सके विवाह सम्पन्न कर दो।"

◂▸

सामिनाथ शर्मा की इच्छाएँ पूरी हुईं। सावित्री का हँसी-खुशी के साथ सुन्दरेश से विवाह हो गया। विवाह के एक वर्ष बाद उसका गौना हो गया। सुन्दरेश के माँ-बाप को गुजरे वर्षों बीत चुके थे। सावित्री ने घर में स्वामिनी की भाँति प्रवेश किया। जब वह पहली बार पति के यहाँ गयी, उसके साथ उसके माता-पिता भी गये। यह तय किया गया कि वे दस दिन तक रहकर लड़की को अपनी नयी गृहस्थी सँभालने में सहायता देंगे। पर वे सिर्फ दो दिन ही ठहरे। सुन्दरेश ने उनके प्रति स्नेह का व्यवहार किया किन्तु उसके आधुनिक ढंग के रहन-सहन का पुराने विचार के सास और ससुर पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसके प्रति वह उदासीन रहा। वह हजामत बनाता दिन के तीन बजे। घर के भीतर जूता पहने ही चलता-फिरता। वह हिन्दुओं के धार्मिक अन्धविश्वासों की खिल्ली उड़ाता। सामिनाथ शर्मा को यह कतई नापसन्द रहा और वे चले गये। जब विदाई की बेला आयी तो उसने सावित्री से कहा—"यह लड़का अहंकारी और स्वेच्छाचारी मालूम पड़ता है। तुम्हें इसे चतुराई से चलाना होगा। प्रतिदिन ईश्वर के सहस्र नाम जपना और पार्वती की स्तुति करना मत भूलना।"

सावित्री इस गुरु-शिक्षा को सुनकर मुस्करा दी। उसकी माँ ने धीरज बँधाते हुए कहा—"सावित्री का कुछ बिगड़ नहीं सकता। हमें

यह देखकर जरूर ज्यादा खुशी होती अगर हमारा जमाई ठीक ढंग का होता। परन्तु यही जिद्दी और बहके हुए लड़के अपनी पत्नियों से अच्छा व्यवहार किया करते हैं।"

जब माँ-बाप चले गये, गृहस्थी का नाटक दो पात्रों से आरम्भ हुआ—सावित्री और सुन्दरेश। सावित्री सुन्दरेश की कुर्सी की बगल में झेंपती हुई खड़ी थी। सुन्दरेश ने सावित्री का हाथ थाम लिया और उसे जबरदस्ती दूसरी कुर्सी पर बिठला कर भाषण देना आरम्भ किया—

"तुम्हें जंगली गँवारों के इन बेकार और असंस्कृत रिवाजों को छोड़ देना चाहिये। कल से तुम्हें उनके लिए समय न मिल सकेगा। मैं तो केवल अपनी 'प्रेक्टिस' ही देख-भाल सकूंगा। दूसरे सभी काम तुम्हें देखने होंगे। आज सवेरे मैंने तुम्हारे नाम बैंक में हिसाब चालू कर दिया है और दो हजार रुपये जमा कर दिये हैं। हर महीने मैं उसमें अपनी कमाई का आधा जमा कर दूंगा। यह रही तुम्हारी चेक-बुक। घर-गृहस्थी के किसी विषय में तुम मुझसे कुछ न पूछना। तुम उसे कैसे चलाती हो, इस बाबत मैं न तुमसे कभी कुछ पूछूँगा और न शिकायत ही करूँगा। अगर तुम कुछ और भी काम करना चाहती हो तो मेरी डाक देख देना। तुम अगर टाइप करना सीख सको तो बहुत काम आयेगा। मैं चाहता हूँ कि हम हर प्रकार बराबरी के साझेदार रहें। पर मैं तुम्हें किसी तरह से भी बाध्य नहीं करूँगा। तुम जिस हद तक ठीक समझो अपने को यहाँ खपा लो।"

सुन्दरेश ने सावित्री के आगे यदि कभी कोई भाषण झाड़ा था तो वह यही था। बाद में कोई आवश्यकता भी नहीं थी। वैवाहिक जीवन के प्रथम बारह वर्षों में सावित्री की क्षमताओं और उसकी बढ़ती जिम्मेदारियों में निरन्तर होड़-सी लगी रही। कभी-कभी वह बहुत थक जाती थी पर सब मिलाकर वह प्रसन्न थी। दो वर्षों में वह न केवल गृह-संचालन की कला में दक्ष हो गयी, वरन् अपने पति की निजी सचिव भी बन गयी।

और फिर उसे दूसरे नये काम भी करने पड़ते थे। सुन्दरेश ने एकाएक अपनी पैतृक सम्पत्ति को बेच डालने तथा नया घर और अस्पताल बनवाने का निश्चय कर लिया। उसने बनवाई का ठेका दे दिया; बाकी देख-भाल, हिसाब-किताब और खर्च का सारा भार सावित्री पर छोड़ दिया। घर खड़ा हो जाने पर सुन्दरेश आँख का विशेषज्ञ होने के लिए आस्ट्रिया चला गया और अपने साथ सावित्री को भी लेता गया। वे छः महीने बाद लौटे।

◀▶

शुरू में कुछ महीनों तक सावित्री ने अपने पिता के आदेशों का पालन किया और प्रतिदिन सहस्रनाम का जाप और पार्वती के स्तोत्रों का पाठ करती। वह गृहस्थी का काम समाप्त करके यह धार्मिक कर्तव्य भी पूरा कर लेती। सुन्दरेश आराम-कुर्सी पर उसके पास बैठ जाता। वह कभी कुछ न कहता, किन्तु कभी-कभी उस पर हँस देता। सावित्री जानती थी कि उसके पति का धर्म में विश्वास नहीं है। यदि वह मना करता और बहस करता तो वह

भी शायद हठ करके पूजा में लगी रहती। परन्तु मौन व्यंग विश्वास का सबसे बड़ा शत्रु है। निज के उखड़ते हुए विश्वास को जानती हुई सावित्री खीझ उठती। एक बार वह पूछ बैठी—"क्या तुम सोचते हो कि ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है ?"

"मैं नहीं जानता", उसके पति ने उत्तर दिया। "बुद्धि-ग्राह्य विषयों के सम्बन्ध में जानना ही काफी कठिन होता है। मन से परे की वस्तुओं के लिए हम क्यों परेशान हों ?"

"क्या तब हमारा यह जरा-सा मन ही निर्णायक है ?" सावित्री ने चोट की। "क्या हमारे पुरखों और ऋषियों ने हमें धोखा देने के लिए ही धर्म की स्थापना की है ?"

सुन्दरेश ने नरमी के साथ प्रश्न को टाल दिया और कहा—"हम इस बारे में क्यों झगड़ें ? तुम्हारे किसी चीज में विश्वास करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। मेरा अपना विचार है कि इस संसार में कोई अपना काम करता जाए वही बहुत है। जब हम मर जायँ तब दूसरी चीजों को सँभालने का काफी समय मिलेगा।"

सावित्री ने तर्क को आगे नहीं बढ़ाया। तड़के सबेरे से रात तक काम करने के बाद रात को नौ बजे प्रार्थना करने के लिए बैठना अब उसे बहुत बड़ा भार-सा लगता था। उसने सप्ताह में एक दिन ही प्रार्थना करने का संकल्प किया। कुछ समय बाद उसने वह भी छोड़ दिया और दशहरे के दस दिनों में एक पुजारी से पाठ करवा कर ही संतोष कर लिया।

× × ×

आस्ट्रिया से लौटने के बाद सुन्दरेश की प्रेक्टिस दिन दूनी रात चौगुनी होती गयी। उसने जार्ज टाउन में एक दवाखाना खोल दिया और शाम को वहाँ बैठने लगा। हर साल उसकी मोटर नयी हो जाती। वह सदा उसे अपने आप चलाता और पचास मील प्रति घंटे की चाल को भी धीमी मानता। सावित्री जब भी कार में उसके साथ जाती, डर जाती। वह उससे मिन्नतें करती कि इस प्रकार अंधाधुंध गाड़ी चलाने का फल अवश्य ही दुर्घटना होगा। यह सुन कर वह गाड़ी और भी तेज कर देता और उसके भय में आनन्द लेता।

विवाहित जीवन के आठ वर्ष बाद उनके एक लड़की हुई। सुन्दरेश ने निश्चय किया कि अब अगले आठ साल तक दूसरा बच्चा नहीं होना चाहिये। सावित्री ने अनुभव किया कि इस निश्चय का कारण है उसके प्रति सुन्दरेश का प्रेम। इस प्रकार सावित्री का जीवन बरसाती गंगा की तरह गति पकड़ता गया।

× × ×

सामिनाथ शर्मा को अपने जमाई के रंग-ढंग पसन्द न थे। इसलिये वह उसके यहाँ न जाता। पर उसकी पत्नी विशालाक्षी साल में दो या तीन बार सावित्री के पास अवश्य जाती। कभी-कभी वह सावित्री को भी अपने साथ लेकर लौटती। किन्तु सावित्री मायके अधिक दिन न रहती। राजू शास्त्री की भविष्यवाणी को बतलाने से दम्पति की आस्था धर्म में हो सकेगी या नहीं इस पर सामिनाथ शर्मा को संदेह था। पर जब वह आनन्द और जीवन-रस

से छलकते हुए अपनी लड़की के प्रसन्न और प्राणवान चेहरे की ओर देखता तो उसे लगता कि उसके जीवन पर भय और चिन्ता की छाया डालना पाप होगा। पर ज्यों-ज्यों वह अभिशप्त चौदहवाँ वर्ष निकट आने लगा, उसकी चिन्ता बढ़ती गई। उसे किसी भयानक दुर्घटना के होने में संदेह न रहा। वह निरंतर प्रार्थना करता कि उससे सावित्री का जीवन एकदम तबाह न हो जाय। वह स्वभाव से ही धार्मिक व्यक्ति था। सुन्दरेश की नास्तिकता ने उसे और भी अधिक धार्मिक बना दिया। उसने अपनी सारी आमदनी गणेश के मंदिर को चढ़ा दी। वह अपना सारा समय रामायण पढ़ने और भजन गाने में व्यतीत करता। शायद अपनी भक्ति के फलस्वरूप ही सामिनाथ शर्मा सावित्री के जीवन की वह दुर्घटना देखने के लिये जीवित न रह सका। सावित्री के विवाह के तेरहवें वर्ष के अन्त में उसे सन्निपात ने धर दबाया। तीन दिन के भीतर ही उसकी हालत खतरनाक हो गयी। सावित्री को तार द्वारा सूचना दी गई। सुन्दरेश तत्काल न जा सकता था। अतः उसने सावित्री को आगे भेज दिया और शीघ्र ही आने का वचन दिया।

जब होश रहता तो सामिनाथ शर्मा के मन में यह विचार दृढ़ होता जाता कि उसे अपनी पत्नी और पुत्री को वह रहस्य बता देना चाहिये। अन्त में जब उसे लगा कि मृत्यु निकट आ गई है तो उसने उन्हें पास बुलाया और राजू शास्त्री की भविष्यवाणी के संबंध में बतला दिया। इस आघात से वे सँभल सकें, इसके पूर्व ही सामिनाथ शर्मा संसार से कूच कर गये।

सुन्दरेश दूसरे दिन पहुँचा। माँ और बेटो ने सलाह करने के बाद निश्चय किया कि यह रहस्य उसे न बताया जाय।

◂▸

शुद्धि हो जाने के बाद सावित्री और विशालाक्षी मदरास लौट आयीं। अपनी पत्नी में सहसा परिवर्तन देखकर सुन्दरेश चिंतित हो उठा। ज्योंही वह घर लौटी उसने सुन्दरेश से कार न चलाने को कहा। उसने इस बात की खिल्ली उड़ाना चाही पर सावित्री की जिद उसके हठ से भी कहीं अधिक प्रबल साबित हुई और उसे हार खानी पड़ी। उसने यह भी देखा कि बिना उसकी जानकारी के घर में अनेक परिवर्तन भी किये जा रहे हैं। सुबह और शाम बैठक में चार वेदपाठी वेदों का पाठ करते हैं। सावित्री नियमित रूप से मंदिर जाती और पूजा करती है।

सुन्दरेश नाराज होता और चकित भी। पहले उसने सोचा कि उसकी सास का आना इस परिवर्तन का कारण है। किन्तु वह तो बहुत सीधी-सादी स्त्री थी। इस मामले में सावित्री को प्रभावित कर सकने की मनःशक्ति उसमें नहीं थी। हो सकता है अधिक परिश्रम करने से सावित्री की नसें दुर्बल हो गई हैं। अतएव उसने सुझाव रखा कि तीन महीने की छुट्टी लेकर वे तीनों कोडाई-केनाल के सुन्दर पहाड़ी स्थान पर चलें। किन्तु सावित्री ने तेजी के साथ वह प्रस्ताव ठुकरा दिया और बोली कि अगले साल देखा जायगा। उनके सुखी वैवाहिक जीवन की धारा जैसे एकाएक किसी चट्टान के गिर जाने से रुक गई हो।

उस अभिशप्त दिन को केवल एक ही मास रह गया था। सावित्री सोचने लगी कि ज्योतिषी की भविष्यवाणी शायद गलत निकले। किन्तु विशालाक्षी की चिंता क्रमशः बढ़ती ही गई। वह नींद से एकाएक जाग पड़ती और चिल्लाती—"सावित्री !" सावित्री भयभीत हो जाती कि कहीं वह उसके पति की उपस्थिति में रहस्य खोल न दे। सुन्दरेश ज्योतिष का भारी शत्रु था। वह कहा करता था कि ज्योतिष सर्वथा झूठ है और यही हिन्दुओं के दुःख और भय का कारण है। सावित्री सोचती कि यदि उसे पता लग गया तो वह कोई अज्ञानता कर बैठेगा और दुर्भाग्य को स्वयं निमंत्रण देगा।

विशालाक्षी की हालत खतरनाक हो चली। वह कोई खाना न पचा सकती। वह अकसर बेहोश हो जाती और बेहोशी में बड़-बड़ाने लगती। सुन्दरेश इतना व्यस्त रहता कि उसे सुनने का समय ही न मिलता।

शाम के पाँच बजे थे। विशालाक्षी की दशा खराब थी। सावित्री चिंतित हो गई। उसने अपने पति को तत्काल आने के लिए फोन किया। उसका ड्राइवर कहीं गया हुआ था। अतः वह कार में बैठा और स्वयं जितनी तेज हो सकता था घर की ओर दौड़ा। अपने घर से कुछ ही दूरी पर वह एक मोटर से भिड़ गया। उसी समय विशालाक्षी चिल्लाई—"हे ईश्वर !" और चल बसी।

सावित्री अपने पति के आगमन की चिंता में बैठी थी, उसे अपनी माँ की मृत्यु का पता तक न चला। सदर अस्पताल से फोन आया। उसने टैक्सी ली और कुछ ही मिनटों में अस्पताल पहुँच

गयी। सुन्दरेश स्पेशल वार्ड में एक बिस्तरे पर अचेतन पड़ा था। कोई बाहरी चोट न थी। सावित्री को पता न चला कि अगले दो घंटे किस तरह बीते। अन्त में सुन्दरेश जैसे नींद से उठा और सावित्री भी चैतन्य हुई। उसने बताया कि कोई बात नहीं है, सिर्फ पीठ में जरा-सा दर्द है। दोनों घर पहुँचे।

सावित्री एक वर्ष तक चुप रही और बाद में वह रहस्य बताया। यह सुनकर ज्योतिष में सुन्दरेश का विश्वास और भी कम हो गया। उन दोनों में इस विषय को लेकर अकसर कहा-सुनी हो जाती।

"यह अंधविश्वास तुम्हारी माता की मृत्यु का कारण बना और मैं मरते-मरते बचा", सुन्दरेश ने बिगड़कर कहा।

"नहीं। भविष्यवाणी सच्ची थी और ईश्वर की कृपा ने ही हमारी रक्षा की," सावित्री ने विश्वास के साथ जवाब दिया।

▶ ▶ ▶

भुतहा बरगद ▸▸▸

चेल्लामा बाहर के बरामदे में बैठी हुई थी। उसने कहा—"काफी देर हो चुकी है, जयराम, तुम्हारे लौटने तक क्या अँधेरा नहीं हो जायगा ?"

जयराम बगल में खड़ी हुई जानकी की ओर इशारा करके बोला—"हम पाँच बजे से चलने को तैयार बैठे हैं। पर माँ ! तुम्हारी यह बहू सिंगार ही करने में लगी है, जैसे हम शिमला की मालरोड पर सैर करने जा रहे हों।"

उत्तर में जानकी बस मुस्करा दी। जयराम का छोटा भाई रामानुज बोला—"शिमला में तो हर एक शृंगार किये रहता है। दूसरे का ध्यान आकर्षित करना तो बस यहीं हो सकता है।" माँ हँसी और बोली—"तुम्हें हँसी नहीं करनी चाहिए। आखिर वह नवयुवती है। नदी के किनारे वाले बरगद के संबन्ध में अजीब बातें कही जाती हैं। तुम्हें अँधेरा होने से पहले ही लौट आना चाहिये।"

तीसरे पहर वे सब साथ बैठकर वाल्मीकि-रामायण का अरण्य-कांड पढ़ रहे थे। जानकी श्लोक पढ़ती, जयराम व्याख्या करता।

जब उसने वह श्लोक पढ़ा जिसमें रावण द्वारा सीताहरण का वर्णन है तो जानकी की आँखों से आँसू बह निकले। उसका ध्यान दिलाते हुए जयराम ने परिहास किया—"जानकी, बरगद के पेड़ में रावण छिपा हुआ है! अच्छा होगा कि तुम घर पर ही रहो और हमें घूमने के लिये जाने दो।" जानकी ने गुस्से में जवाब दिया—"क्या हमारे राम और लक्ष्मण अंग्रेजी नहीं पढ़े हैं? बेचारे अयोध्या के राम की तरह उस आसानी से धोखे में थोड़े ही आएँगे।"

वे रवाना हुए। रामानुज यह कहकर आगे-आगे चला कि तब तो हमें उसी क्रम में चलना चाहिये जिसमें वे वन को गये थे। मैं आगे चलूँगा, भाभी बीच में चलेंगी और तुम अन्त में रहकर चारों ओर सतर्कता से नजर दौड़ाते रहना।

अपने उन अलमस्त बच्चों की बातें सुनकर चेल्लामा का मन अभिमान से भर गया। उसने ईश्वर का नाम लिया और सीख दी—"पुराणों के सम्बन्ध में मजाक करना ठीक नहीं है। अँधेरा होने से पहले ही लौट आना, भूलना मत।"

वे गाँव की सड़क पर हो लिये। सीमा के आखिरी घर में शाम को गपशप करने के लिये गाँव की स्त्रियाँ एकत्र हो गई थीं। युवाओं की यह टोली उन सब से परिचित थी। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। सारी वृद्धा स्त्रियाँ एक साथ बोलीं—"भगवान करे तुम राजा बन कर रहो, और जानकी, तुम रानी बनी रहो।" आगे बढ़ते हुए उन्होंने बुढ़िया कोमल की आवाज सुनी—"चेल्लामा सचमुच

भाग्यवान है। उसके दोनों बेटे एक दूसरे को वैसे ही चाहते हैं जैसे राम और लक्ष्मण।"

पार्वती ने उसे टोकते हुये कहा—"तुम बहुत तारीफ करके उन्हें नजर न लगा देना। अगर चेल्लामा सुनेगी तो उसे चिन्ता होगी।"

◂▸

अदानूर कावेरी नदी की सहायक राजश्री के तट पर बसा हुआ एक गाँव था। गाँव धारा से लगभग सौ गज के फासले पर था। दोनों के बीच में एक चारागाह था। जहाँ पर गाँव का रास्ता मैदान पार कर नदी से मिलता था वहाँ पर एक बड़ा बूढ़ा बरगद का पेड़ था जिसकी जटायें चारों ओर फैली हुई थीं। बहुत दूर तक कोई दूसरा पेड़ नहीं दिखता था, अतः यह पेड़ उस दृश्य में सबसे प्रमुख था। वृक्ष की जड़ में गणेश की एक मूर्ति स्थापित थी। गाँववाले प्रति शुक्रवार को इस देवता की नारियल और मिठाई से पूजा करते। बच्चे एकत्र होते, मिठाइयाँ खाते और खेलते-कूदते। यद्यपि गणेश रक्षक-देवता हैं, पर लोगों का विश्वास था कि वह पेड़ 'पिंडारी' नाम की प्रेतात्मा का निवास-स्थान है। लोग रात को उस बरगद के निकट जाने में डरते थे। जब वे पेड़ के नीचे से जा रहे थे, जयराम ने उसकी शाखा पर अपनी छड़ी मारी। ज्योंही पत्तियाँ खड़खड़ाईं, वह चिल्लाया—"देखो, पिंडारी दौड़ रहा है!" जानकी भी हँसी पर अपने हृदय की धड़कन सुनकर शर्म से गड़ी जा रही थी। वे नदी के किनारे एक मील तक बढ़ गये और नदी के बीच एक रेतीले तट पर बैठ गये। नदी सूख चली थी, एक सिरे पर केवल एक

पतली धारा कतरा रही थी। वे बड़ी देर तक प्रसन्नता-पूर्वक बातें करते रहे।

यद्यपि यह उनका पुश्तैनी गाँव था, परन्तु दोनों भाई पिछले दस वर्ष से वहाँ नहीं रहे थे। जानकी पहली बार आई थी। जयराम केन्द्रीय सचिवालय में ३००) मासिक पर सहायक का काम करता था। रामानुज ने अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई समाप्त की ही थी। गत चार वर्षों से वे गाँव आने की सोच रहे थे। पर इस वर्ष ही उन्हें अवसर मिल सका था। जब बड़े शहरों में पले युवक किसी छोटे-से गाँव में जाते हैं तो उन्हें लगता है जैसे वे किसी नये संसार में हों। ग्रामीणों की बोली और उनकी आदतें जानकी के लिये सदा आश्चर्य और विनोद का विषय बनी रहतीं। वे भी जानकी को किसी दूसरे गृह की निवासिनी समझते। किसानों की वे स्त्रियाँ जो बहुत अधिक नहीं शर्माती थीं, उनके घर आतीं और निःसंकोच कहतीं—"हम नई दुलहिन को देखने आये हैं।" मध्यवर्गीय परिवारों की लड़कियाँ इस तरह बेतकल्लुफी नहीं करतीं, और बहू के कपड़ों और गहनों को देखने के लिये नये-नये बहाने बनातीं, पर ये सदा घर में निस्संकोच आती जाती रहतीं।

जब वे आराम से बैठे गाँव के अपने इन अनुभवों को एक दूसरे से बता रहे थे, उन्होंने देखा कि सूरज ढल रहा है। वे उठे और घर की ओर चले। वे थोड़ी ही दूर आये होंगे कि उन्होंने एक आश्चर्यमय दृश्य देखा। एक नाग-नागिन का जोड़ा परस्पर प्रेम-

प्रदर्शन कर रहा था। वे नदी के किनारे चक्कर काट रहे थे। अन्त में दोनों के शरीर एक दूसरे से गुथ गये और आधा भाग जमीन पर पड़ा रहा और आधा सीधा तना हुआ खड़ा हो गया।

तीनों कुछ मिनट तक यह तमाशा देखते रहे। तब रामानुज ने जोड़े पर मारने के लिये एक कंकड़ उठाया। किन्तु पीछे से आते हुये एक किसान ने उसे रोकते हुये कहा—"ऐसा मत करो, छोटे बाबू। प्रेम करते हुये नाग को छेड़ना खतरनाक होता है। वह पीछा करेगा और मारने वाले को काट खायगा।"

वे साँपों को देखते रहे। कंकड़ फेंकने के लिये रामानुज का हाथ खुजला रहा था। उसने सोचा कि किसान के अंधविश्वास से डरना ठीक नहीं है। उसने साँपों पर कंकड़ी फेंक दी। साँपों को खलल पहुँचा। वे अलग हुये और उनकी ओर लपके। प्रत्येक चार गज लम्बा था और बच्चे के हाथ के बराबर मोटा था। जानकी भयभीत हो उठी और उसने जयराम का हाथ पकड़ लिया। जयराम भी डर गया पर किसी तरह अपने को सँभाले रहा और हाथ में छड़ी तैयार किये शान्त खड़ा रहा। नाग कुछ दूर उनकी ओर बढ़े पर शीघ्र ही लौट गये और एक झाड़ी में विलीन हो गये। तीनों ने फिर चलना शुरू किया पर उनका मन एक अज्ञात भय से भर गया।

जयराम के पास एक टार्च थी। वह उसकी रोशनी आगे डाल कर सावधानी से रास्ता दिखा रहा था। यह बैलगाड़ी की सड़क थी। अतः दोनों ओर लीक थी और बीच में ऊँची उठी हुई पगडंडी।

जानकी उसके आगे चल रही थी। आश्वासन देने के लिये जयराम ने उसके कन्धे पर हाथ रख लिया था।

कृष्ण पक्ष था। तारे आकाश में हीरों की तरह चमक रहे थे। तारों की ओर ताककर जब उन्होंने जमीन की ओर देखा तो सड़क और भी अंधेरी जान पड़ी। बरगद के पास पहुँचने पर अंधकार और भी बढ़ गया। वे हृदय में बढ़ते हुए भय को नहीं रोक सके। वे बिलकुल चुपचाप चलने लगे।

पेड़ के नीचे सूखे पत्ते गिरे हुए थे। जब वे वहाँ पहुँचे तो पत्तियों में कुछ खड़खड़-सी हुई। जयराम ने जहाँ से आवाज आ रही थी उधर टार्च घुमाई परन्तु मसाला चुक गया था और टार्च बुझ गई। जानकी के दायें पैर में कोई चीज चुभी। वह चिल्लाई—"हे ईश्वर!" और जयराम के गले में बाँहें डाल दीं। उसने उसे मजबूती से थाम लिया और ढारस बंधाने लगा। परन्तु उसकी बाँहों पर वह भारी पड़ने लगी और जयराम बैठ गया। उसने जानकी के सिर को अपनी गोद में रख लिया। जानकी बेहोश हो गई थी।

रामानुज नदी की ओर गया और रूमाल को पानी में भिगोकर जानकी के मुख पर छींटे डालने लगा। उसने उसके पैर के तलुओं को मला। उसे होश न आया। दोनों भाइयों को उसे उठाकर घर ले जाना पड़ा। हर एक पग मील-सा लम्बा लग रहा था। किस प्रकार वे घर पहुँचे यह उन्हें याद न रहा।

तीन घंटे तक अदानूर की बूढ़ी औरतें जानकी को झाड़ती-

फूँकती रहीं। उन्होंने धूप जलाई। उसके सारे शरीर पर नीम के तेल की मालिश की। कई तरह की पत्तियाँ और बूटियाँ जलाईं और उनका रस पीने को उसे बाध्य किया। लेकिन सब निष्फल रहा। जानकी लकड़ी के कुन्दे की तरह पड़ी रही। बूढ़ियों के मन में इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि जानकी को भूत लग गया है। पर जोर से कहने का किसी को साहस नहीं होता था। चेल्लामा ने सोचा कि यह सब बूढ़ी औरतों की नजर लगने से हुआ है, विशेष करके उस डाइन कोमल की। पर वह भद्रता के नाते खुला आरोप नहीं लगा सकी। आसपास दस मील तक कोई डाक्टर न था। सबेरा होने पर एक डाक्टर मिल सका। दोनों भाइयों को लग रहा था कि यह सब अपनी माँ की चेतावनी हँसी में टाल देने के कारण हुआ है और जानकी को होश में लाने के इन प्रयत्नों में दखल देने की उनकी हिम्मत न होती थी।

सभी स्त्रियाँ अपनी कला में हारकर निराश अपने घरों को लौट गयीं। पर उनका जाना था कि जानकी उठ खड़ी हुई। उसने आँखें मलीं और वह कहाँ है या उसे क्या हुआ था, इसको भुलाकर आँखें टिमटिमाने लगी। उसे नीम के तेल की दुर्गन्ध असह्य हो उठी और उसको उल्टी हो गई। जब उसने अपने दोनों ओर अपने पति और अपनी सास को भारी परेशानी में बैठे देखा तो बोली—"मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं गरम पानी से नहाने के बाद ठीक हो जाऊँगी।" वह नहायी, भोजन किया और गहरी नींद सो गई।

दूसरे दिन सबेरे उसमें पिछली रात के अनुभव के कोई चिन्ह

शेष नहीं रह गये थे, बस यही कि वह जरा थकी हुई लगती थी। डाक्टर को बुलाने की उसने कतई नाहीं कर दी। उन्होंने रोज की भाँति रामायण पढ़ी और एक बाजी चौपड़ भी खेली। "ईश्वर की कृपा से हम दुर्घटना-ग्रस्त होते-होते बच गये हैं। हम कल यहाँ से चले जायँगे," चेल्लामा बोली और तैयारियाँ करने लगी।

परन्तु सात बजे शाम को जानकी मूर्च्छित हो गई और तीन घंटे तक अचेत रही। उन्होंने दूसरे दिन डाक्टर को बुला भेजा। उसने बताया कि कोई खराबी नहीं है, एक नुस्खा लिख दिया और फीस लेकर चलता हुआ। पर जानकी प्रति दिन ठीक उसी समय मूर्च्छित हो जाती। चेल्लामा का पक्का विश्वास हो गया कि उसकी बहू को प्रेत लग गया है। जयराम और रामानुज इसे 'हिस्टीरिया' कहते थे। पर वास्तव में जो बात थी वह न नाम में निहित थी, न विश्वास में। जानकी दुबली पड़ती गई।

अब दवा देना बन्द कर दिया गया और मंत्रों की बारी आई। मस्तान नाम का एक मुसलमान आसपास भूतप्रेत झाड़ने के लिए प्रसिद्ध था। जब उसने आकर बताया कि लड़की को बरगद का पिंडारी लग गया है तो उनका विश्वास दृढ़ हो गया। उसके कहने के अनुसार जानकी के सिर पर ठंडे जल के बत्तीस घड़े उड़ेले गये। उसने अरबी में कुछ आयतें पढ़ीं। कपड़े का एक भूत बनाया गया और उसे सौ बार जोर-जोर से पीटा गया। जब अन्त में उसने जोर से पूछा—"क्या तुम बरगद के पिंडारी नहीं हो?" तो जानकी ने भय की मुद्रा में अपने सिर और शरीर को हिलाया,

जिससे उसके लंबे बाल सारे मुख पर छा गये। उसने एक मास तक यही किया पर कोई लाभ नहीं हुआ।

अब मामला हनुमान जी के एक भक्त पुजारी के हाथ सौंपा गया। "यह कोई निम्न कोटि की प्रेतात्मा नहीं है, यह दुष्ट ब्रह्म-राक्षस है", उसने कहा और उन्हें आश्वासन दिया कि मैं हनुमानबली की सहायता से उसे भगा दूँगा। बेचारा पुजारी शुभ-चिंतक था। उसने सच्चे हृदय से प्रार्थना की पर यह देखकर कि कोई लाभ नहीं होता, उसने कहा—"तुम्हारे ग्रह खोटे हो रहे हैं। ब्रह्मराक्षस अभी दो वर्ष तक पिंड नहीं छोड़ेगा।"

जयराम यह सब करामात देखकर क्रोध से उबल पड़ा। रामानुज हर तरह आजिज आ गया था। पर उन्हें भय था कि यदि वे कोई शिकायत करेंगे तो उनकी माँ कहेगी—"मेरी चेतावनी न सुनने से तुम्हें दंड मिल चुका है। अपनी अंग्रेजी शिक्षा अपने तक ही रखो। इन मामलों में टाँग मत अड़ाओ।" पर अपने प्रयत्नों से वह भी हार चुकी थी। उसने मान लिया कि मदरास जाकर किसी दवाई की सुइयाँ लगा कर देखना चाहिये। शुभ दिन देखकर वे रवाना हुए।

रेलवे स्टेशन जाने में बरगद का पेड़ रास्ते में पड़ता था। रामानुज ने सोचा कि अगर जानकी फिर से पेड़ को देखेगी तो हो सकता है उसका रोग बढ़ जाय। उसने किसी की राय नहीं ली। जाने के दिन की पिछली रात उसने चार किसानों को लिया और जड-पत्ते समेत बरगद का पेड़ ही उखाड़ फेंका। किसान पहले

डरे पर जब उसने प्रत्येक को पाँच-रुपये दिये तो उनका भय लालच के सामने न टिक सका। तना और शाखाएँ दृष्टि-पथ से दूर हटा दिये गये।

वे सबेरे छः बजे चलने वाले थे। किन्तु बरगद के गिरने की बात गाँव भर में फैल चुकी थी। चूँकि चेल्लामा यात्रा की तैयारी कर रही थी, उसे खबर न लगी। वह जानकी के साथ बैलगाड़ी में बैठ गयी। जयराम और रामानुज कुछ आगे चले। जहाँ पहले बरगद का पेड़ खड़ा था, एक भीड़ इकट्ठी हो गई थी। जानकी ने दो मिनट तक उस स्थान को देखा। जैसे उसे कुछ बात याद आयी हो उसने अपनी सास से पूछा—"माँ! बरगद का पेड़ कहाँ है?" चेल्लामा सन्न रह गयी। वह गाड़ी से उतरी और चारों ओर देखने लगी। पेड़ नदी में पड़ा था। गाड़ीवान ने कहा—"छोटे बाबू ने कल रात इसे गिरवा दिया। यह बात सुनकर उसे ऐसा आघात लगा जैसे बिजली गिर गयी हो। रामानुज को अपनी माँ के सामने आने की हिम्मत न हो रही थी। अतः वह नजरों से दूर चला गया था। जयराम अपनी माँ के पास आया और बोला—"डरो मत माँ। दद्दा चाहते थे कि हमारी भाँति दूसरे भी बरगद के कारण परेशान न हों, अतः उसे गिरवा दिया।" चेल्लामा चुप थी। उसका माथा चकरा रहा था और हिलती गाड़ी में अपना संतुलन बनाये रखने में उसे प्रयत्न करना पड़ रहा था। उसने जानकी के चेहरे पर एकाएक आगयी चमक नहीं देखी।

जब वे मदरास पहुँचे तो ऐसा लगा कि दुष्टात्मा भाग गयी है।

बेहोशी का दौरा फिर नहीं हुआ। उसके बाद छः महीने तक चेल्लामा की धारणा बनी रही कि वह रामानुज को लग गयी है। उसे वह अपनी आँखों की ओट नहीं होने देती थी। रामानुज ने सोचा कि उसके पेड़ काट डालने के कारण ही जानकी भय से मुक्त होकर अच्छी हुई। अतः उसने अपनी माँ की बात धैर्य से स्वीकार कर ली। पर चेल्लामा का यह पक्का विश्वास था कि मस्तान के मंत्रों और हनुमान-भक्त की प्रार्थनाओं को ही उसको अच्छा कर देने का श्रेय है। उसने दिल्ली और शिमला में उनकी तारीफ की। उसके निःस्वार्थ प्रचार से उन्होंने खूब लाभ उठाया।

▶ ▶ ▶

चन्द्रमती ▸▸▸

एक महीने की निरन्तर प्रतीक्षा के बाद चन्द्रमती को मोहन का तार मिला। उसमें लिखा था—"कल सुबह के मेल से पहुँच रहा हूँ।"

तार तो मिला, लेकिन उसे पढ़कर चन्द्रमती को शान्ति नहीं मिली। उसके हृदय में विपरीत भावनाओं का संघर्ष होने लगा और होने लगा नेत्रों से अश्रु-प्रवाह। वह अपने शयन-कक्ष में चली गई और भीतर से साँकर बन्द कर ली। चारपाई पर बैठकर वह दर्पण में अपना चेहरा गौर से देखने लगी।

संसार में चेचक के समान निर्दय कोई दूसरा रोग नहीं है। अन्य रोग या तो रोगी को मार डालते हैं या कुछ सताकर स्वयं विलीन हो जाते हैं। लेकिन चेचक आदमी का चेहरा ऐसा बिगाड़ देती है कि कभी-कभी वह पहचान में ही नहीं आता और जीवन भर अवर्णनीय हीनता का अनुभव करना पड़ता है। एक मास पूर्व जब चन्द्रमती अपनी माँ के यहाँ मदुरा आई थी, वह सौंदर्य में अद्वितीय थी—कनक-लता-सी पतली और पूर्ण-चन्द्र-सी कान्तिमयी। जो उसे देखता मोहित हो जाता।

मायके आने के तीन दिन बाद वह बीमार पड़ गई और बीस दिन तक इतनी बीमार रही कि जान के लाले पड़े रहे। वह बच तो गई, लेकिन उसकी शकल-सूरत इतनी बिगड़ गई कि जैसे बीमारी के पहले और बाद-वाली चन्द्रमती में कोई समानता ही न हो। उसके चेहरे, शरीर, हाथ और पैरों पर सब जगह भद्दे दाग पड़ गये। उसकी आँखें बुरी तरह से फिरने लगीं। और सबसे भद्दी बात यह थी कि वह मोटी हो गई। उसकी बदसूरती का और अधिक वर्णन करना निरर्थक है। स्वयं उसके माता-पिता भी उसकी शक्ल देखकर अपनी घृणा को छिपा नहीं सकते थे।

क्या सौन्दर्य के विनष्ट हो जाने से वह अपने पति का प्रेम भी खो देगी?—यही एक चिन्ता उसके हृदय को निरन्तर कचोटती रहती थी। उसकी माँ समझाती—"जिसने बारह वर्ष तक निष्ठा-पूर्ण सेवा की हो ऐसी पत्नी की शक्ल की कोई भी भला पति कभी परवाह न करेगा? तुम लोगों का प्रेम काफी दृढ़ हो चुका है। बेकार चिन्ता मत कर मेरी बेटी!"

लेकिन चन्द्रमती ने अपनी माँ की मुख-मुद्रा से यह स्पष्ट जान लिया कि स्वयं उन्हें अपने कथन पर विश्वास न था। वह रोने लगी और करुण स्वर में बोली—"माँ! क्या तुम्हें भी मुझसे सत्य छिपाना चाहिये। अगर तुम्हारे गले की सोने की जंजीर अचानक पीतल की हो जाय तो क्या तुम उसे पूर्ववत् ही पहनती चली जाओगी। पुरुषों के लिये हम स्त्रियों का महत्व मुख्यतः हमारे रूप-शृंगार के कारण ही है। अगर मैं मर गई होती तो कहीं अच्छा होता। कुछ समझ में

नहीं आता कि मैं उनका सामना किस प्रकार करूँगी।" माँ चुप रही।

हालांकि मोहन इसके पहले ही आना चाहता था लेकिन चन्द्रमती ने उसे आने से साफ मना कर दिया था। कारण यह बताया कि कहीं उसे भी छूत न लग जाय। लेकिन वास्तव में बात दूसरी ही थी। उसे आशा थी कि शायद कुछ समय मिल जाने से उसके दाग अगर बिलकुल न मिटेंगे तो कुछ हल्के अवश्य हो जायेंगे। लेकिन आशा के विरुद्ध वे और काले पड़ गये तथा पहले से भी अधिक भद्दे हो गये। इसलिये अब उसका आगमन स्थगित करना निरर्थक था। उसने उसे आने के लिए लिख दिया और दूसरे ही दिन तार से उसकी सूचना आ गई। अब उसे खेद हो रहा था कि उसने उसका आना दो हफ्ते और क्यों नहीं टाल दिया।

इस बीमारी के बाद वह सोचती थी मानो उसका नया जन्म हुआ हो। लेकिन वह नया जन्म कितना भयानक था! क्या उसके पूर्व जन्म के पाप उदय हुये थे? क्या ईश्वर को ऐसा ही निर्दय विनोद मंजूर था? उसका गत वर्ष लिया गया चित्र सामने दीवार पर टँगा था। उसने इस चित्र को देखा और फिर दर्पण में अपनी वर्तमान मुखाकृति को। उसने आह भरी—"हे भगवान! पहले तुमने मुझे इतना सुन्दर क्यों बनाया? क्या तुम्हारी इच्छा है कि मैं अब इतनी कुरूप बनी रहूँ। अगर तुम्हें ऐसा ही कठोर उपहास प्रिय है तो फिर तुममें और शैतान में क्या अंतर है?"

वह सोचने लगी कि उसकी कुरूपता उसके पति के लिये 'तो

और भी कठिन परीक्षा होगी। अगर इस परिवर्तन के बाद वह उसे पूर्ववत् ही प्रेम करता रहा तो वह मानव नहीं कोई देवता होगा। इसी तरह के विचार उसके मस्तिष्क में निरन्तर चक्कर काटते रहे। रात भर उसे नींद न आई।

मोहन मद्रास के एक दैनिक समाचार-पत्र का मुख्य संवाददाता था। ऊँचे कद और स्वस्थ शरीर का वह एक सजीला जवान था। उसका रंग गोरा और मुद्रा आकर्षक थी। वह कुशाग्र बुद्धि और विनोदपूर्ण था। १० वर्ष में उसने इतनी ख्याति प्राप्त कर ली थी कि वह नगर का सब से अधिक सफल संवाददाता माना जाता था। उसका वेतन ३००) मासिक था। हर वक्त उसका एक पैर अपनी मोटर-साइकिल पर रहता था। बड़े-से-बड़ा राजनैतिक नेता, मशहूर-से-मशहूर सिनेमा स्टार, कोई भी उसे भेंट से इन्कार न कर पाता। कोई भी नई महत्त्वपूर्ण घटना होती तो सबसे पहले वह खबर लाता। कोई ऐसी सभा, कोई ऐसी दावत न होती जहाँ वह न होता। वह अपने दफ्तर के पास ही एक इमारत की दूसरी मंजिल में रहता था। उसका परिवार छोटा-सा था। जब विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के बाद उसने नौकरी शुरू की तब वह था और उसकी माँ थी। शादी के बाद वे तीन हो गये। वे तीनों बहुत खुश थे।

एक दिन सिनेमा-भक्तों के एक प्रीतिभोज में अभिनेत्री कमलाक्षी से मोहन की मुलाकात हो गई। दो ही महीने में वे एक दूसरे के अनन्य भक्त बन गये। मोहन को अपनी पत्नी से कम प्रेम न था। जब वह घर आता तो चन्द्रमती को देखकर मुग्ध हो जाता। वह यह

भी मानता था कि उसकी पत्नी की तुलना में उसकी नई प्रेयसी का सौन्दर्य नगण्य है। फिर भी वह कमलाक्षी के प्रेमपाश में अधिकाधिक आबद्ध होता गया। वह नगर के समीप एक बस्ती में अलग मकान में रहती थी। उसे मोहन से किसी धन की कामना न थी। अभिनेत्री के रूप में उसकी आय मोहन से कहीं ज्यादा थी।

एक ही नगर में रहनेवाली पत्नी और प्रेमिका दोनों को प्रसन्न रखना सरल नहीं होता। लेकिन इस कठिन खेल को सफलतापूर्वक खेलने के लिए मोहन को कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। जब कभी वह प्रेमिका के कारण घर न पहुँच पाता या घर के कारण प्रेमिका से मुलाकात का वायदा पूरा न कर पाता तो झट से अपने अख़बार के काम का बहाना बना देता।

दैनिक समाचार-पत्र का हर छोटा-बड़ा काम जरूरी होता है। चन्द्रमती यह सोच भी न सकती थी कि अख़बार के अतिरिक्त उसके पति को किसी दूसरी स्त्री में भी दिलचस्पी हो सकती है। क्योंकि सास-बहू में खूब पटती थी, इसलिये मोहन को कमलाक्षी के साथ काफी समय बिताने में कोई कठिनाई न होती थी।

यह नाटक पाँच साल तक सफलतापूर्वक चलता रहा। फिर हृदय की गति रुक जाने से कमलाक्षी की अचानक मृत्यु हो गई। पत्नी और माता से अपना शोक छिपाने के विचार से मोहन तीन दिन तक घर नहीं आया। उसने उनसे कह दिया कि अखबार के काम से उसे किसी दूसरी जगह जाना है। लेकिन कमलाक्षी से उत्पन्न वह अपनी दोनों लडकियों को लेकर उसके घर पर रहा। उसने कमलाक्षी की

कुल सम्पत्ति उन बच्चियों के नाम जमा कर दी। उसने कई बार सोचा कि वह अपनी पत्नी और माता से सब रहस्य कह दे और मीनाक्षी तथा विशालाक्षी को उन्हें सौंप दे। लेकिन इसका उसे साहस न हुआ। चन्द्रमती पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, वह इसका ठीक अनुमान न लगा सका। संभव है वह नाराज होकर अपने माता-पिता के पास चली जाय। रही माँ की बात, सो वह तो मोहन को देवता की तरह पूजती थी। यह सोचकर मोहन को पीड़ा होती थी कि जब माँ को सब रहस्य मालूम होगा तो उसकी देव-प्रतिमा क्षण-मात्र में छिन्न-भिन्न हो जायगी। अन्त में उसने दोनों लड़कियों को एक होस्टल में दाखिल करा दिया और उनके खर्च के लिए ५०) मासिक भेजने लगा।

कमलाक्षी की मृत्यु के बाद मोहन चन्द्रमती को पुनः एक नवीन उत्साह से प्रेम करने लगा। कुछ महीने बाद उसकी माँ भी मर गई। अब प्रेम-क्रीड़ा के समान गृह-प्रबन्ध में भी दोनों पूरा-पूरा भाग बटाने लगे लेकिन कमलाक्षी का रहस्य उसपर भूत की तरह छाया रहता। अगर वह उसका उद्घाटन अपनी पत्नी से कर देता और बच्चियों को घर ले आता तो वह पूरी तरह निश्चिंत और सुखी हो जाता। लेकिन इस खतरे को मोल लेने का साहस उसमें न था।

जब उसने सुना कि चन्द्रमती चेचक से सख्त बीमार है तो वह डरा कि कहीं वह भी मर न जाय और वह निस्सहाय अकेला रह जाय। जब उसे मालूम हुआ कि वह बच गई तो उसने संतोष की साँस ली। वह सोचता था कि उसके चेहरे पर कुछ दाग तो हो जायेंगे,

लेकिन उसे इसमें संदेह न था कि उनके रहते हुए भी उसका सौन्दर्य बना रहेगा चाहे वह पहले से कुछ कम सुन्दर ही क्यों न दिखाई पड़े। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसके प्रेम में कुछ भी कमी न आएगी। उसकी बीमारी में वह सोचता कि कहीं यह उसे अपने छल का दंड न मिल रहा हो। उसने प्रतिज्ञा की कि जीवन के शेष दिनों में वह उसके प्रति आदर्श प्रेम का व्यवहार करके अपने पाप का प्रायश्चित करेगा।

हमें यह तो ज्ञान रहता है कि जो संसार हमें दिखाई दे रहा है वह अखिल ब्रह्माण्ड का केवल एक छोटे-से-छोटा भाग है। लेकिन हमें यह भान नहीं होता कि इसी तरह हमारे सजग भाव और विचार हमारे अन्तर्जगत् के एक अत्यन्त लघु अंश हैं। लेकिन भाव-जगत् के विषय में यह बात उतनी ही सत्य है जितनी कि बाह्य दृश्य-जगत् के विषय में। जब वह मदुरा पहुँचा और उसने चन्द्रमती को देखा तो उसके मन में भय और घृणा के भाव भर गए। उसने शीघ्र ही अपने को सँभालने का प्रयत्न किया लेकिन चन्द्रमती उसकी प्रतिक्रिया ताड़ गई। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो उसपर बिजली गिर पड़ी हो। क्षण-मात्र में मोहन प्रकृतिस्थ हो गया और अपनी पत्नी को सांत्वना देने लगा। उसने कसम खाई कि उसके प्रेम में जरा भी कमी न आएगी। चन्द्रमती उसकी कसमें चुपचाप सुनती रही। यद्यपि वह उन्हें सत्य न मानती थी फिर भी शब्दों से कुछ संतोष अवश्य होता था। वह सोच रही थी कि इसमें उसके पति का दोष भी क्या है। निर्दय भाग्य के खेल के लिए उसे दोष देना व्यर्थ है। अब पतिदेव

चाहे जैसा अनुभव करें उसका एकमात्र कर्त्तव्य यही है कि उनकी सेवा करे और शेष जीवन यथासंभव अच्छे-से-अच्छे ढंग से व्यतीत करे।

लेकिन कर्तव्य-रूप में प्रेम का अपनाना ऐसा ही है जैसा पैसों के लिए काम। प्रतिदिन पति-पत्नी के बीच खाई बढ़ने लगी। चन्द्रमती पति पर इतना शक करने लगी कि उसका कोई इलाज न रह गया। एक दिन जब वह चौके में थी तो उसने मोहन के कमरे में अपनी नौकरानी की आवाज सुनते ही उसे तुरन्त नौकरी से निकाल दिया। प्रातःकाल अपने पति के जागने से काफी पहले वह सोकर उठती और उसकी मेज तथा कोट की जेबों के कागजों की खूब जाँच-पड़ताल करती। एक दिन उसे उन दोनों लड़कियों का फोटो मिल गया। वह सोचने लगी—काश, उसके भी वैसे ही बच्चे होते तो वह कितनी प्रसन्न होती! लेकिन यह फोटो मोहन की जेब में आया कहाँ से ? पर उसे मोहन से साफ-साफ पूछने का साहस न हुआ।

मोहन हमेशा अपनी मेज की दोनों दराजें बन्द करने तथा ताली रखने में बहुत सतर्क रहता। एक दिन वह तालियों का गुच्छा साथ ले जाना भूल गया; वह मेज पर छूट गया। चन्द्रमती ने दराजें खोलीं और उसकी एक-एक चीज की जाँच-पड़ताल करने लगी। पहले उसने चेकबुक देखी। उसने देखा कि हर महीने बिला नागा ५०) लड़कियों के एक होस्टल को जा रहे हैं। उसने अनुमान लगाया कि इस बात में और लड़कियों के उस फोटो में जरूर

कुछ सम्बन्ध है। बाईं दराज में उसे एक अलबम मिला। उत्सुकता से उसने उसके पन्ने पलटे। उसे कमलाक्षी के पाँच फोटो मिले। लेकिन उनमें से किसी में कोई नाम न था, सिर्फ हर एक के नीचे उसका वर्ष दिया हुआ था। उन दोनों लड़कियों के भी कुछ फोटो मिले। जब वह उन्हें गौर से देख रही थी, मोहन आ गया। उसके दफ्तर की तालियाँ उसी गुच्छे में थीं; इसलिए वह उनके लिए लौट आया था। चूँकि चन्द्रमती अलबम देखने में लीन थी, उसे मोटर-साइकिल की आवाज सुनाई न दी।

जैसे ही उसने मोहन को देखा वह अलबम बन्द करके एक दम खड़ी हो गई और शर्मिन्दा होने लगी। एक मिनट तक दोनों चुपचाप एक दूसरे की तरफ देखते रहे। फिर वे दो कुर्सियों पर आमने-सामने बैठ गये। मोहन ने पूरी कथा कह सुनाई, एक भी बात नहीं छिपाई। फिर वह बोला, "चन्द्रमती, अब आगे हम लोग इसी तरह नहीं रह सकते। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे सौन्दर्य के नष्ट होने से मुझे निराशा नहीं हुई, लेकिन अब मेरे मस्तिष्क में मोह का स्थान दया ने ले लिया है। तुम भी अब डाह करना छोड़ दो। कमलाक्षी इस संसार में नहीं है और तुम्हारा रूप इस तरह बदल गया है। मुझे नारी-विलास में कोई रुचि नहीं रह गई है। अगर तुम्हारी राय हो तो मैं लड़कियों को यहीं ले आऊँ। हम दोनों एक दूसरे का अविश्वास करना छोड़कर भाई-बहन की तरह रहें।

चन्द्रमती ने कोई जवाब न दिया। मोहन अपने दफ्तर चला गया।

चन्द्रमती को यह जानकर भारी धक्का लगा कि जब उसका अतुलनीय सौन्दर्य अक्षुण्ण था तब भी उसका पति एक दूसरी नारी में अनुरक्त था। उसने अपने हृदय से कहा—"इस प्रकार का छल अक्षम्य है। मैं उसे कभी माफ न करूँगी।" लेकिन उसे यह देखकर उलझन हुई कि वास्तव में वह स्वयं नाराज न थी। रहस्योद्‌घाटन से वह कुछ शान्त हो गई थी। वह सोचने लगी कि आखिर अपने सौन्दर्य से उसे कोई खास मदद तो नहीं मिली। इसलिये उसके नष्ट होने पर शोकार्त्त होने की कोई आवश्यकता नहीं। अगर मोहन उसके चन्द्रमुख से विमुख होकर कमलाक्षी के सामान्य सौन्दर्य से अभिभूत हो सकता है तो यह भी सम्भव है कि वह उसका उलटा भी कर सकता है और उसकी वर्तमान अवस्था में भी कुछ प्रेम कर सकता है। वह लड़कियों को होस्टल से घर ले आई।

विशालाक्षी और मीनाक्षी के घर आ जाने पर एक महीने तक तो चन्द्रमती कभी-कभी यह सोचने का प्रयत्न करती कि वे उसकी अपनी लड़कियाँ नहीं हैं, लेकिन वास्तव में वे उसकी अपनी ही बच्चियाँ बन गई थीं। नव-लता-बल्लरी के समान बढ़ती हुई उन दोनों को देखकर वह स्वयं अपना कष्ट भूल गई। दोनों लड़कियों ने सेतु बनकर पति-पत्नी के बीच की खाई को पाट दिया। उनका पुराना प्रेम नष्ट हो गया, लेकिन उसके स्थान पर एक नवीन पवित्र प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगी।

◄◄◄

इकलौता बेटा ▸ ▸ ▸

गोपू के मित्र उससे ईर्ष्या करते थे; और करें क्यों न ? ईर्ष्या के लिए अनेक कारण मौजूद थे। वह एक अच्छे सरकारी पद पर था। परिवार में कोई संघर्ष न था। बैंक के खाते में काफी रुपया जमा था। घर में मनोनुकूल गृहिणी थी। किसी तरह की कोई परेशानी न थी। मध्य-वर्ग के नवयुवकों में हजारों में शायद ही कोई एक ऐसा होगा जो इस प्रकार भाग्यशाली होने का गर्व कर सकता हो।

उसकी यह सुखी स्थिति पाँच वर्ष तक रही। जैसे ही उसने बी० ए० (आनर्स) पास किया वह ८०) मासिक पर अकाउंटेंट-जनरल के दफ्तर में नौकर हो गया। उसके पिता तीन वर्ष पूर्व ही मर चुके थे। उनकी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले उसकी शादी हुई थी। नौकरी मिलते ही वह माँ और पत्नी को लेकर गृहस्थी जमाकर रहने लगा। छः महीने बाद माँ भी मर गई। उसके कोई भाई-बहन थे ही नहीं। पत्नी कोमल के साथ उसका चिंतामुक्त, मधुर जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

कोमल गाँव की लड़की थी। वह सिर्फ प्राइमरी कक्षा तक पढ़ी थी। उसका रंग गेहुँआँ था, लेकिन कोई खास खूबसूरत न थी। जब वह सिर्फ बारह वर्ष की थी, गोपू से उसकी शादी हो गई। उसके पिता ने दहेज में तीन हजार रुपये दिये। जब तक वह उसके साथ न रहने लगी गोपू को उसके स्वभाव का ठीक-ठीक पता न लग सका।

इसलिए जब गोपू ने मदरास में घर जमाया तो वह यह नहीं जानता था कि उसकी पत्नी किस ढंग की है; लेकिन कुछ ही दिनों में सब आशंकाएँ शान्त हो गईं। कोमल कम बोलती थी। गाँव की लड़कियों की तरह वह कपड़े-लत्ते और व्यवहार में कुछ बेढंगी-सी थी, लेकिन काम से वह कभी थकती न थी, कभी चिड़चिड़ाती भी न थी। उसका चेहरा हमेशा खिला रहता था। सबेरे ५ बजे से लेकर रात के ६ बजे तक वह बिना थके काम में लगी रहती थी। अकसर गोपू ताज्जुब करता कि इतनी देर तक वह न जाने क्या करती रहती है। जब-जब वह इस बारे में पूछता तो जवाब में वह सिर्फ मुस्कुरा देती। वह चाहे जितनी थकी या ऊबी हुई हो, लेकिन जब कभी कोई उससे बात करता तो उसकी मनमोहक मुस्कान आपसे आप चेहरे पर बिखर जाती। यह देखकर गोपू सोचता कि दुनियाँ में उससे ज्यादा सुन्दर और कोई नहीं है।

दाम्पत्य-जीवन के दूसरे वर्ष में उनके एक लड़का हुआ। अपने

स्वर्गीय पिता के नाम पर गोपू ने उसका नाम माधव रखा। बालक भली भाँति बड़ा हुआ।

माधव के बाद फिर उनके कोई सन्तान न हुई। इससे दो वर्ष तक तो उन्हें कुछ शान्ति मालूम पड़ी, लेकिन जब दो के बाद तीसरे, चौथे और फिर पाँचवें वर्ष में भी कोई बच्चा न हुआ तो वे सोचने लगे कि शायद उन्हें अकेले माधव से ही संतुष्ट होना पड़ेगा। गोपू मन-ही-मन कहता—चलो यह बहुत अच्छा हुआ। कोमल भी यही कहती। दोनों एक दूसरे को यही विश्वास दिलाने की चेष्टा करते कि यह ठीक ही है, लेकिन न जाने कैसे उनके हृदय में चिन्ता और असन्तोष रूपी घुन लग गया। इसका आभास पहले कोमल में दिखाई पड़ा। उसकी माँ के सात बच्चे हुए थे और दादी के नौ। वह सोचती, तब जरूर उसकी प्रजनन-शक्ति को कुछ आघात पहुँचा होगा। लेकिन वह इसके बारे में कुछ जानती न थी। हाँ ऐसा अवश्य अनुभव करती थी कि उसका शरीर किसी शिशु को दुलराने-मल्हाने के लिए दर्द कर रहा हो। वह पाँच वर्ष के माधव को ही खिलाने लगती। उसे अपनी गोद में ले लेती और चूमती चली जाती। माधव को यह अच्छा न लगता। वह चाहता कि गली में भाग जाय और दूसरे लड़कों के साथ खेले। कोमल डरती थी कि कहीं माधव को चोट न लग जाय। इसलिए वह हर तरह से उसे घर में ही रोक रखती। वह उसे अकसर बिस्कुट और मिठाई देती। दिन में कई-कई बार उसके कपड़े बदलती। यही नहीं कि वह उसे अपनी बाली, चूड़ी

और अँगूठी पहना देती बल्कि अपने गले का हार तथा अन्य आभूषणों से भी उसका शृंगार करती।

गोपू को यह अत्यधिक लाड़-प्यार अच्छा न लगता। वह सोचता कि इस तरह से लड़का बिगड़ जायगा। वह जानता था कि उसके निर्धन पिता ने कितने परिश्रम और संघर्ष के बाद उसे पढ़ा-लिखाकर एक अच्छी नौकरी के योग्य बना पाया था। उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह अपने लड़के को एक उच्च पद पर पहुँचाने के लिए अपने से भी अधिक सुविधाएँ देगा। उसे आशा थी कि अगर भाग्य ने साथ दिया तो माधव इंग्लैंड जाकर आई० सी० एस० बनेगा। इसके लिए वह हर महीने बैंक में एक अलग खाते में २०) जमा करने लगा। ज्योंही माधव स्कूल में दाखिल हुआ उसने घर पर पढ़ाने के लिए भी एक मास्टर रख दिया।

पति-पत्नी में अपने इकलौते लड़के को लेकर अनबन होने लगी। कोमल का कहना था कि स्कूल और घर की पढ़ाई का लड़के पर बहुत बोझ पड़ रहा है। गोपू कोमल को दोष देता—तुम माधव को मिठाई और बिस्कुट दे-देकर उसकी तन्दुरुस्ती बिगाड़ दोगी। उनमें सबसे ज्यादा मतभेद था माधव की वेशभूषा के विषय में। कोमल के गाँव के धनी बच्चों में मखमल के इस्तेमाल का फैशन था। लेकिन जब माधव मखमल का कोट-नैकर पहन कर स्कूल गया तो पड़ोसियों ने उसका मजाक उड़ाया। गोपू को यह बुरा लगा।

किसी अजनबी को यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारत में बैलगाड़ी लीक-लीक कैसे चलती चली जाती है। वह सोचता है कि भौतिक विज्ञान के नियम से तो उसे पग-पग पर पलट जाना चाहिए, लेकिन भारत का किसान इसकी कभी चिन्ता नहीं करता। जब कभी लीक में कोई खास गहरा गड्ढा आ जाता है तो गाड़ी एकदम उचक जाती है और गाड़ीवालों का सिर बज जाता है। कोई दूसरा देखे तो सोचेगा कि ऐसे गड्ढों में गाड़ी टूटकर चूर-चूर हो जायगी, लेकिन भारतीय चोट की जगह को सहला भर लेता है और फिर निश्चिन्त हो जाता है। अन्त में गाड़ी अपने गंन्तव्य स्थान पर पहुँच जाती है।

हिन्दू परिवार भी एक बैलगाड़ी के समान है। पति-पत्नी में खूब लड़ाई होते देखकर कोई बाहरी आदमी यह समझेगा कि इनकी गाड़ी अब अवश्य टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। लेकिन वास्तव में हजारों में एक भी नहीं टूटती। पति-पत्नी दोनों किसी-न-किसी तरह अपने झगड़ों को दूसरों से छिपा लेते हैं, मानो वे एक अटूट शृंखला में बँधे हों। हालाँकि माधव को लेकर गोपू और कोमल में हमेशा झगड़ा बना रहता था लेकिन दूसरों के लिए वे एक हो जाते थे। मित्रों को कोमल के चेहरे पर सदा एक-सी मुस्कान दिखाई पड़ती थी। जब कोमल और गोपू अकेले होते तो कोमल सदैव प्रसन्न न दिखाई देती, लेकिन गोपू धैर्य और सहिष्णुता से काम लेता। उसके मित्र और सम्बन्धी उसके सुख-सौभाग्य से ईर्ष्या करते रहे। माधव स्कूल की अन्तिम

परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हुआ और फिर कालेज में दाखिल हो गया।

◆

प्रेम और घृणा एक दूसरे के विरोधी भाव माने जाते हैं। लेकिन यह नितान्त सत्य नहीं। वे चीनी और मिर्च के समान हैं जो सामान्यतः भोजन में अलग-अलग काम आती हैं लेकिन सलाद और अचार जैसे कुछ पदार्थों में कभी-कभी साथ-साथ इस्तेमाल होती हैं। इसी प्रकार कुछ मानसिक अवस्थाओं में प्रेम और घृणा भी साथ-साथ रहते हैं। यह अद्भुत बात अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धियों—जैसे माता-पिता और सन्तान, भाई-बहन, गुरु-शिष्य, राजनैतिक नेता तथा उसके अनुयायियों में देखी जा सकती है। अपने माता-पिता के विषय में माधव का हृदय भी इसी प्रकार की विरोधी भावनाओं के द्वन्द्व से चूर-चूर हो रहा था। जब वह उनके स्नेहपूर्ण लालन-पालन की बात सोचता तो उसका हृदय प्रेम और कृतज्ञता के भावों से पूर्ण हो जाता। लेकिन जब वह देखता कि उसके माता-पिता हठपूर्वक उसे एक बहुमूल्य संपत्ति मानकर ही चल रहे हैं और उसे बंद करके सुरक्षित रखना चाहते हैं तथा उसकी वृत्तियों का स्वाभाविक विकास नहीं होने देना चाहते तो वह घृणा और आक्रोश से झल्ला उठता। उसने उनके शासन के विरुद्ध विद्रोह करने का निश्चय कर लिया। वह होटलों में अपौष्टिक पदार्थ खाता, लेकिन घर पर उसकी माँ उसकी रुचि के अनुसार जो-जो व्यंजन विशेष रूप से बनाकर

जिसके बाप को २००) माहवार वेतन मिलता हो और जिसके पास एक लाख की जायदाद हो ऐसे इकलौते लड़के के लिए शादियों की कमी न थी। गोपू की मेज पर जन्म-पत्रियों के ढेर लग गए। माधव और उसके माता-पिता किसी न किसी लड़की को देखने के लिए जाते ही रहते। लेकिन ग्रह अनुकूल न थे। दो साल तक कोई ऐसी लड़की न मिली जो माँ-बाप और लड़के सब की शर्तों को पूरा कर सके।

तामिल में एक कहावत है जिसका अर्थ है कि जब घड़ी ठीक होती है तो बाघिन तक से ऐसे ही दूध निकाला जा सकता है जैसे बकरी से। जो शादी दो वर्ष तक कहीं तय न हो सकी वह तीन दिन में पक्की हो गई। लड़की का नाम था कल्याणी। वह मदुरा के एक संपन्न वकील की लड़की थी, स्कूल में दसवें दर्जे में पढ़ती थी। अपने सौन्दर्य और योग्यता की दृष्टि से वह गोपू और कोमल की कसौटी पर खरी उतरती थी। मदुरा के लिए रवाना होने से पूर्व माधव ने निश्चय कर लिया कि वह अपनी स्वतंत्र राय पर अड़ जायगा और लड़की को यह कहकर नापसन्द कर देगा कि वह चश्मा लगाती है। लेकिन जब कल्याणी उनके सामने आई तो अन्य लड़कियों के समान वह इस अवसर पर शर्माई नहीं, बल्कि निःसंकोच उनकी तरफ देखती रही, मुस्कराई और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। गोपू और कोमल ने एक दूसरे की तरफ देखा और आँखों-ही-आँखों में निश्चय कर लिया कि लड़की पसन्द नहीं। इससे माधव ने उलटा निश्चय कर लिया। वह उससे

प्रेम करने लगा। तुरन्त सगाई तय हो गई और कुछ दिन बाद बड़ी धूमधाम से शादी भी हो गई।

◀▶

गोपू के मित्र और सम्बन्धी उसके असाधारण सौभाग्य की अकसर चर्चा करते और उससे पहले से भी ज्यादा ईर्ष्या करते—कैसा भाग्यशाली व्यक्ति है! कैसा आदर्श परिवार है! कोई घरेलू चिन्ता नहीं, इकलौता लड़का और अब एक सुन्दर सुशील पतोहू—ऐसी कि चित्र खींच लो!

यह तो ठीक है कि गोपू और कोमल दूसरों के सामने अपनी पुत्र-बधू की प्रशंसा ही करते लेकिन कल्याणी के आगमन के पहले ही दिन से उनके मस्तिष्क में आशंका और विद्वेष ने घर कर लिया और ये भावनाएँ प्रतिदिन सुदृढ़ होती गईं। माधव पहले से ही अपने माता-पिता के प्रति उदासीन था। वे चिन्तित होने लगे कि अब तो वह उनकी बिलकुल परवाह न करेगा। कल्याणी उनके साथ समुचित आदर से व्यवहार करती। उसमें असीम आत्म-विश्वास था। वह अनुभव करने लगी कि उसके सास-ससुर पुराने ढंग के व्यक्ति हैं जिनकी बातों को कोई विशेष महत्व देने की आवश्यकता नहीं। वह अपनी सास से न तो झगड़ा करती और न बहस; लेकिन सब काम वह करती अपने ही ढंग से। उसने घर की सब व्यवस्था बदल दी—बिजली, फरनीचर सब में परिवर्तन कर दिया। दरवाजों और खिड़कियों पर फिर से रंग-रोगन करवाया और उनके लिये नये पर्दे खरीद लिये। जो

पुराना फरनीचर कामचलाऊ था उसे रहने दिया, लेकिन उसे भी नया रूप-रंग दे दिया। मेज-कुर्सियों पर नये कवर डाल दिये। उसने चौके की व्यवस्था और प्रतिदिन की भोजन-सूची में भी परिवर्तन करने की योजना बनाई। लेकिन रसोई-घर कोमल का अपना गढ़ था; उसमें बहू को हस्तक्षेप करने की अनुमति न मिली।

सास-ससुर बहू की और सब बातें किसी तरह सहते रहे, लेकिन जब कल्याणी ने प्रतिदिन संध्या समय वीणा बजाना शुरू किया तो उन्हें यह असह्य हो गया। मोहल्ले भर के लोग संगीत सुनने के लिए उनके घर जमा हो जाते। कल्याणी प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत करती और केले तथा पान-सुपारी बाँटती।

जब गोपू और कोमल अकेले होते तब गोपू ताना मारता—"बहुत कहती थीं कि हमारी बहू तो ऐसी हो कि वीणा बजाए! अब खूब मन भरकर वीणा सुनो! घर क्या है, संगीतशाला हो रहा है!"

कोमल उलटा जवाब देती, "इससे क्या? क्या वीणा बजाने-वाली बहुएँ दूसरे घरों में नहीं हैं? क्या वे हमारे घर की तरह ही रोज संगीत-सभा जोड़े रहती हैं? जब अपने ही घर में पुरुषों को अधिकार का प्रयोग करने में भय लगता है तो घर के अस्तव्यस्त हो जाने में आश्चर्य ही क्या है?"

उन्होंने इसकी चर्चा माधव से नहीं चलाई। यद्यपि गोपू और कोमल एक दूसरे को निरन्तर दोष देते रहते थे, लेकिन कल्याणी

के आगमन से उनमें एक तरह से पुनः मेल-सा होने लगा था। वे दोनों समान रूप से इसका अनुभव करते थे कि न जाने कहाँ से एक छोटी-सी छोकरी आ गई है जो उनकी पसीने की कमाई और दुलारे लड़के को उनसे छीन ले रही है।

माधव की कालेज की पढ़ाई के अन्तिम वर्ष में उसे पुत्र-लाभ हुआ। प्रसव के लिए कल्याणी अपने माता-पिता के पास मदुरा चली गई। बच्चा होने के बाद वह छः महीने तक वहीं रह गई। कोमल नाती खिलाने के लिए उत्सुक थी, इसलिए उसे कल्याणी का यह व्यवहार अच्छा न लगा। वह रोज अपने लड़के से बहू-बेटे को बुलाने के लिए आग्रह करती। लेकिन कल्याणी ने यह कहकर साफ मना कर दिया कि बच्चे के हित की दृष्टि से वह छः महीने नहीं आयेगी।

अन्त में जब कल्याणी मद्रास आई तो कोमल सोचने लगी कि अच्छा होता अगर बहू अभी छः महीने और वहीं रह जाती। बच्चा सुन्दर था। गोपू कहता कि वह बाबा को पड़ा है, लेकिन कोमल उसका उपहास करके कहती—"देखते नहीं हो, नकशा सब मेरा-सा है।" कल्याणी ने किसी किताब में पढ़ रखा था कि बच्चों को बहुत ज्यादा दुलार करना अच्छा नहीं। वह प्रसव से महीनों पहले शिशु-पालन-सम्बन्धी कुछ पुस्तकें खरीद लाई थी, और उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि इस विषय में अद्यतन डाक्टरी आदेशों का ही पालन करेगी। बच्चे को तोलने के लिए वह एक तराजू खरीद लाई; रोज बच्चे का वजन लेती और फिर उसका

आफ बनाती। बच्चे का नहाना, खाना, पहनना, सोना सब कुछ किताबी नियमों के अनुसार होता। कल्याणी की माँ उसकी इस सनक का मजाक उड़ाती, लेकिन फिर लड़की को छूट दे देती कि जो अच्छा लगे करो। कोमल को यह बरदाश्त न था। वह डरती कि बच्चे को रोज तोलने से कहीं कोई व्याधि न लग जाय। वह सोचती—क्या खाने का निश्चित समय आने तक बच्चे को भूखा रोने देना निर्दयता नहीं है? क्या बच्चा सोने के लिए घड़ी की सुई की प्रतीक्षा करेगा? लेकिन कल्याणी इनमें से किसी भी बात पर कोई समझौता करने के लिए तैयार न थी। उसने साफ कह दिया कि वह बच्चे को अपने ही ढंग से पालेगी।

माधव ने डिग्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और शीघ्र ही वह भारत सरकार की ऑडिट एंड एकाउंट्स सर्विस की प्रतियोगिता में सफल हो गया। उसी साल गोपू रिटायर हो गया और पेन्शन लेने लगा।

माधव की नियुक्ति पूना में हुई। कल्याणी ने निश्चय कर लिया कि वह अपने सास-ससुर के साथ न रहेगी। बालक गोपू, जिसका नाम बाबा के नाम पर रखा गया था, तीन वर्ष का था। उसे अपनी मां का कठोर शासन प्रिय न था। वह उससे डरता और दादी-बाबा से प्यार मानता। बुड्ढा-बुढ़िया बच्चे को हिलाने के लिए एक-से-एक बढ़िया उपाय काम में लाते। कोमल उसके लिए तरह-तरह की मिठाइयाँ बनाती। कंजूस बाबा अपने नाती के लिए कीमती खिलौने खरीदता। कल्याणी सशंक हो गई। इस तरह

से तो लड़का बिलकुल बिगड़ जायगा। उसे आशा थी कि उसका पति उसका पक्ष समर्थन करेगा। माधव ने उसका पक्ष लिया भी, लेकिन जब उसने देखा कि जो बालक अपने दादी-बाबा के साथ खूब खुलकर हँसता-खेलता है वही अपनी माँ को देखकर उदास और दबा-दबा-सा दिखाई पड़ने लगता है तो उसके हृदय में अपने माता-पिता के लिए पुनः प्रेम अंकुरित होने लगा। वह स्वयं भी बच्चे में अनुरक्त होने लगा। जब कल्याणी ने देखा कि वे तीनों उसके विरुद्ध एक हो गये हैं तो वह क्रुद्ध और दुराग्रही बन गई। उसने निश्चय किया कि बुड्ढे-बुढ़िया से अलग रहना ही उचित मार्ग होगा। इसलिए जब माधव ने माता-पिता को पूना साथ ले जाने का विचार प्रकट किया तो कल्याणी घबड़ा गई। उसने इच्छा प्रकट की कि वह कुछ दिन अपने पीहर रह आये और तब तक कुछ महीने माधव पूना में अकेला ही रहे।

बड़ों के लिए यह सोचना स्वाभाविक है कि बच्चों के लिये वे जो कुछ प्रबंध करते हैं शायद उसमें बच्चों की कोई दिलचस्पी नहीं रहती, लेकिन यह सत्य नहीं। बालक गोपू वास्तव में अपने दादी-बाबा से अलग होना नहीं चाहता था। जब से वह मदुरा पहुँचा उदास रहने लगा। कल्याणी तथा दूसरे लोगों ने बहुत कोशिश की कि दादी-बाबा की याद न करे लेकिन इसमें उन्हें सफलता न मिली। अन्त में कल्याणी की माँ को यह चिन्ता होने लगी कि इस तरह से कहीं बालक का स्वास्थ्य न बिगड़ जाय। अतएव उसने कल्याणी को मद्रास वापस भेज दिया। जैसे ही बालक गोपू ने अपने दादी-

बाबा को देखा तो वह ऐसे खिल गया जैसे अरुण-किरण के स्पर्श से कमल। उन्होंने कल्याणी को विश्वास दिलाया कि वे बालक के सम्बन्ध में उसकी इच्छाओं का पूरा आदर करेंगे। उनकी एक ही प्रार्थना थी कि वह बच्चे को उनसे दूर न ले जाय। वे सब पूना चले गये।

नई परिस्थितियों में कुछ दिन तक तो सब चीजें ठीक-ठीक चलती रहीं। लेकिन जब एक बालक को चार-चार आदमी पालना चाहते हों तो एक-न-एक दिन संघर्ष होना अवश्यंभावी है। कल्याणी चाहती थी कि चार वर्ष का होने पर बालक को किसी किंडरगार्टन स्कूल में भेजा जाय। बाबा कहते थे कि इसकी अपेक्षा घर पर कोई मास्टर रखकर पढ़ाना ज्यादा अच्छा होगा। माधव और उसकी माँ चाहते थे कि ऐसी कच्ची उमर में बच्चे पर शिक्षा का कोई बोझ न लादा जाय। बालक की लगभग हर एक बात को लेकर उन लोगों में गरमागरम बहस और खूब झगड़े होते।

जिन समस्याओं को मनुष्य हल नहीं कर पाता उन्हें समय और भाग्य सरलता से सुलझा लेते हैं। अपने पिता के समान माधव के भी गोपू के बाद पाँच वर्ष तक कोई दूसरा बच्चा नहीं हुआ। इससे सब लोगों की धारणा बन गई कि गोपू भी अपने बाप का इकलौता ही रहेगा। मित्र और सम्बन्धी उन लोगों को पुनः इस सौभाग्य पर बधाई देते, लेकिन छः वर्ष बाद बिना किसी प्रत्याशा के कल्याणी ने एक लड़की को जन्म दिया। अगले तीन वर्षों में उसके एक और लड़की तथा एक और लड़का पैदा हुआ।

मित्र और सम्बन्धी इस परिवार-वृद्धि पर सहानुभूति प्रकट करने लगे। लेकिन बड़ों में जो भ्रान्तियाँ पैदा हो गई थीं वे एकदम ऐसे विलुप्त हो गईं मानो किसी ने जादू कर दिया हो। अब कल्याणी को यह चिन्ता होने लगी कि अगर उसके सास-ससुर मर गये तो वह इतने बच्चों को कैसे सँभालेगी। बच्चे आपस में खूब झगड़ते और खेलते। उन्होंने घर के भीतर अपना एक नया साम्राज्य स्थापित कर लिया। बुड्ढा गोपू और माधव उन्हें देख-देखकर खुश होते और हृदय से ईश्वर से प्रार्थना करते कि भविष्य में उनके किसी भी वंशज के इकलौता पुत्र न हो। परिवार के लिए इकलौता बेटा एक अभिशाप है।

संन्यासी ▸▸▸

१८, आचार्य स्ट्रीट, कुम्भाकोनम्। रात के ११ बजे थे। पूर्ण चन्द्र अपनी समग्र आभा से आलोकित था। चन्द्रिका पृथ्वी तथा आकाश को पूर्णतया आच्छादित करके एक विस्तृत रजत-सागर का दृश्य उपस्थित कर रही थी। सरनायकी अपने घर के आँगन में विचार-मग्न बैठी थी। उसकी अवस्था ३३ वर्ष थी। अभी पूर्व-सौन्दर्य की झलक शेष थी, लेकिन उसकी मुख-मुद्रा पर दुःख की काली रेखा अमिट रूप से अंकित हो गई थी। जो कोई उसे देखता दयार्द्र हो जाता।

कोई दिन ऐसा न जाता जब वह अपने जीवन की एक विशेष दुखद घटना का स्मरण न कर लेती। जब-जब वह उसके विषय में सोचती, वह एक ताज़ा दुर्घटना के रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत होती। यद्यपि वह १० वर्ष पुरानी बात थी, लेकिन आज उसे वह दृश्य पुनः अपने पूर्वरूप में ही दृष्टिगोचर हो रहा था।

सबेरे के ६ बजे थे। सरनायकी चौके में भोजन बना रही थी। उसकी छोटी लड़की कमला उसके पास बैठी अपनी लकड़ी की गुड़िया से खेल रही थी और ख़ुशी-ख़ुशी तुतली बातें बना रही

थी। अचानक उसे रसोईघर के पीछेवाले आँगन के कुएँ में किसी चीज के धम से गिरने की आवाज आई। वह सशंक-मन कुएँ की तरफ दौड़ी। उसने देखा कि उसके दोनों लड़के कुएँ में गिर गये हैं। अपने दोनों नेत्रों से भी अधिक प्यारे उन पुत्रों को इस तरह कुएँ में गिरा देखकर वह स्वयं भी उसमें कूद पड़ती, लेकिन कमला के कारण वह ऐसा न कर सकी। कमला रोती हुई उसके साथ-साथ लगी चली आ रही थी और उसकी टाँगों में लिपट रही थी। सरनायकी मूर्च्छित हो गई और जब उसे होश आया तो उसने देखा कि उसके पति वेदान्ताचारी दोनों पुत्रों के शव लिए हुए बैठे हैं। इतने में ही पड़ोसी इकट्ठे हो गये और उन्होंने शवों का विधिवत् दाह-संस्कार कर दिया।

इस दुर्घटना के एक सप्ताह बाद वेदान्ताचारी संसार से विरक्त हो गया। वह संन्यासी हो गया और एक मठ में रहने लगा। इस पर सरनायकी ने एक शब्द भी न कहा। उसने सोचा कि यदि उसके पति उसे तथा उसकी अबोध बालिका को ऐसी दुःखपूर्ण परिस्थिति में त्यागने के लिए सन्नद्ध हैं तो फिर वह उनसे क्यों व्यर्थ अनुनय-विनय करे।

जब वेदान्ताचारी ने सरनायकी की इस निराशाजन्य उदासीनता को देखा तो वह किंचित् विचलित होने लगा। लेकिन फिर उसने सोचा कि यह दुर्घटना मानो ईश्वर की ओर से एक संकेत है कि उसे इस नश्वर और दुःखपूर्ण जीवन के मोह को त्यागकर मुक्ति-पथ की खोज में लीन होना चाहिए। पत्नी और पुत्री के लिए घर है

ही और १० हजार रुपये नकद। दोनों बिना किसी कठिनाई के जीवनयापन कर सकती हैं। यह सोचकर उसने अपना मार्ग निश्चित कर लिया।

सरनायकी को कभी यह स्पष्ट रूप से स्मरण न हो पाता कि उसने अगले १० वर्ष किस प्रकार बिताये। वह केवल इतना जानती थी कि एक के बाद दूसरा दिन एक निश्चित क्रम से आता गया और व्यतीत होता चला गया। वह अपने घर का काम-काज यंत्रवत् करती रही। उसने कमला का पालन-पोषण किया, उसे पढ़ाया-लिखाया। उसकी एकमात्र आकांक्षा यह थी कि वह उसे पाल-पोस कर बड़ा कर दे और किसी योग्य वर के हाथ सौंपकर स्वयंम् निश्चिंत हो जाय। उसकी अन्य सब इच्छाएँ बिना किसी प्रयास के ही समाप्त हो गई थीं। उसके नेत्रों में सदैव पीड़ा बनी रहती; लेकिन अब उनमें ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास की भावना भी प्रतिबिंबित होने लगी। वह सोचती कि भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार उसकी अग्निपरीक्षा ले रहे हैं; उसे अपनी आत्मा उन्हीं को समर्पित कर देनी चाहिए। वह बहुत पढ़ी-लिखी न थी। जब कभी उसे अवकाश मिलता, वह बचपन में याद किए हुए संस्कृत के श्लोक और तामिल के भजन गाने लगती।

अतीत की घटनाओं पर सदैव की तरह विचार करते-करते उस रात उसे एक असाधारण व्याकुलता का अनुभव होने लगा। सम्भवतः यह चाँदनी रात का प्रभाव था। वह सोचने लगी कि यदि उसके पति उसे छोडकर न चले जाते तो क्या होता। शायद वे

अपने दिवंगत पुत्रों की याद भूल जाते और जीवन में फिर रस मिलने लगता, उनके और बच्चे हो जाते। लेकिन सम्भव है उन बच्चों से उन्हें और नई मुसीबतों का सामना करना पड़ता, वे और कष्टों का कारण बन जाते। क्या इस तरह के अनन्त जीवन-चक्र में फँसने से कोई लाभ है? क्या इससे वास्तविक मुक्ति सम्भव है?

जब उसके मस्तिष्क में ये विचार चक्कर मार रहे थे, दरवाजे पर धीरे से आहट हुई। वह घबड़ाकर उठ खड़ी हुई और दरवाजे तक गई, लेकिन उसे बिना खोले ही उसने पूछा—"कौन है?" उसे जवाब मिला—"मैं हूँ वेदान्त। दरवाजा खोलो।"

उसकी कुछ समझ में न आया—यह स्वप्न है या सत्य? वह अपनी आँखें मलने लगी। उसने पास की खिड़की से बाहर झाँका। उसने देखा कि उसके पति सिर घुटाए तथा गेरुआ वस्त्र धारण किए बाहर खड़े हैं। वह लालटेन ले आई और दरवाजा खोल दिया। जब पतिदेव अन्दर आ गये तो उसने उन्हें चुप रहने के लिए संकेत किया और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। वह उन्हें घर के भीतरी भाग में ले गई और फर्श पर बैठने के लिए निवेदन किया। वह स्वयं उनके सामने कुछ हटकर बैठ गई।

पाँच मिनट तक वे एक दूसरे की ओर गौर से देखते रहे। फिर वेदान्ताचारी ने ही मौन भंग किया—"ऐसा मालूम होता है कि मुझे फिर यहाँ देखकर तुम प्रसन्न नहीं हुईं लेकिन इसमें मुझे

कोई आश्चर्य नहीं। जिसने तुम्हें ऐसी दयनीय अवस्था में त्याग दिया हो उसके प्रति तुम्हारे हृदय में घृणा होना स्वाभाविक ही है। मैं बस एक बात चाहता हूँ। मुझे जो कुछ कहना है पहले उसे तुम सुन लो। उसके बाद तुम जो कुछ निश्चय करोगी, मैं उसका पालन करूँगा। जब मैं संसार से विरक्त हुआ उस समय मुझे जीवन दुःख और पीड़ा से परिपूर्ण दिखाई दे रहा था। मैं उससे मुक्ति चाहता था। मैं मठ में प्रविष्ट हो गया और मैंने अध्यात्म-विद्या पढ़ी। मैंने उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता, मुक्ति के इन तीनों शास्त्रों का पारायण किया। मैंने उनके तर्क समझने में पूरे ५ वर्ष व्यतीत किए। लेकिन इस अवधि में मेरे मन में सदैव अशान्ति ही बढ़ती गई। मेरे मस्तिष्क में यह विचार बार-बार आता कि कदाचित् मैंने संसार त्यागने में बहुत जल्दी कर दी। मैंने इस विचार को दबाने का हर तरह से प्रयत्न किया—उपवास किया, योग-साधन किया, लेकिन मेरे हृदय में विराग के स्थान पर राग की ही वृद्धि होती गई। मुझे संन्यासी का यह वेश पाप और ढोंग को छिपाने का एक आवरण-मात्र प्रतीत होने लगा। अपना अध्यात्म-ज्ञान मुझे धोखा दिखाई पड़ने लगा। कभी-कभी मैं आत्महत्या करने की बात सोचता, लेकिन ऐसा करने का साहस न हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया है कि यदि मैं पुनः अपने पारिवारिक जीवन को नहीं अपनाता तो मेरे लिए न संसार में कोई स्थान है और न परलोक में। इसलिए मैं लौटकर यहाँ आ गया हूँ। अब तुम्हारी बारी है, बोलो, क्या निश्चय करती हो ?"

सरनायकी मुश्किल से सांस ले पा रही थी; उसके नेत्रों से अश्रुप्रवाह हो रहा था। वह बोली—"हमारे शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई संन्यासी पुनः गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट होता है तो उसको तथा उसके परिवार को सात पीढ़ी तक यातना भोगनी पड़ती है। हम लोगों का इहलोक तो बिगड़ ही चुका है; क्या यह उचित है कि हम अपना परलोक भी बिगाड़ें ?"

पति ने उत्तर दिया—"यह सब बुढ़िया पुराण है। जब तक हम मनसा, वाचा, कर्मणा दूसरों का कोई अनिष्ट नहीं करते, ईश्वर हमसे कभी नाराज न होगा। पास-पड़ोसियों की हम क्यों चिन्ता करें ? अगर वे व्यर्थ की बातें बकते हैं तो इससे क्या ? क्या उन्होंने तुम्हारा कभी कोई हित किया है ?"

सरनायकी ने निवेदन किया—"मैं आपसे इस प्रकार के सूक्ष्म तर्क तो नहीं कर सकती, लेकिन मेरा हृदय कहता है कि यह ठीक नहीं है। मुझे इसकी इतनी चिन्ता नहीं कि मेरा क्या होगा, लेकिन फिर कमला से कौन शादी करेगा ?" इससे वेदान्ताचारी को निराशा हुई। वह उठ खड़ा हुआ और बड़बड़ाने लगा—"तो, लो, मैं जाता हूँ। अब कुछ समझ में नहीं आता कि मेरा क्या होगा। सम्भव है कि मैं पागल हो जाऊँ या आत्महत्या कर लूँ या फिर पूरा लम्पट बन जाऊँ। लो, मैं चला, नमस्ते !"

सरनायकी की स्थिति बड़ी विषम थी। वह सोचने लगी कि जिस पति से १० वर्ष के वियोग के बाद भेंट हुई हो, क्या उसे इस

प्रकार योंही भगा देना चाहिए ? लेकिन साथ ही शास्त्रों और पुराणों में उसके अटूट विश्वास ने उसे स्मरण दिलाया कि इस प्रकार की दुर्बलता दिखलाने से उसके सिर पर पाप का इतना बोझ इकट्ठा हो जायगा कि वह उससे अनन्त जन्मों में भी मुक्त न हो सकेगी। उसकी एकमात्र जीवित सन्तान के भविष्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ सकता है, इसकी कल्पना से ही वह भयभीत हो गई। वह जमीन पर गिर पड़ी और दोनों हाथों से अपने स्वामी के चरण पकड़ लिए। वेदान्ताचारी पुनः बैठ गया। वह भी उसके सामने मुँह करके बैठ गई और अपनी साड़ी के पल्ले से आँसू पोंछती हुई बोली—"इस समस्या का मेरे पास एक हल है। मैंने कमला की शादी तय कर ली है और वह एक महीने में होने वाली है। लड़के ने हमारे इसी घर में बसने और वकालत शुरू करने का वचन दे दिया है। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि उनके रहने-सहने की उचित व्यवस्था करके स्वयं गया, बनारस और हरिद्वार आदि की तीर्थ-यात्रा करने जाऊँगी। अगर तुम किसी प्रकार तीन महीने और मठ में ही रह सको तो फिर हम दोनों साथ-साथ चल सकते हैं।"

वेदान्ताचारी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने अपनी सोती हुई लड़की को स्नेह की दृष्टि से देखा और फिर उसे तथा उसके भावी पति को आशीर्वाद देता हुआ बाहर चला गया।

× × ×

कमला का विवाह-संस्कार निर्विघ्न समाप्त हो गया और उसका पति उसी के घर रहने लगा। जब वे अच्छी तरह बस गये तो

सरनायकी पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गई। उसने सिर्फ सफर-खर्च ले लिया और शेष सब नकद रुपया तथा जायदाद अपनी लड़की के नाम कर दी।

कमला ने पूछा—"माँ, यह सब तुम क्या कर रही हो? क्या दो महीने बाद तुम लौटोगी नहीं?" माँ ने उसे प्यार से समझाया —"यदि मैं लौट भी आई तो मैं अब इन संसारी झमेलों में नहीं फँसना चाहती। मैंने इस सम्पत्ति की रक्षा केवल तुम्हारे लिये की है। इसलिये अब इसे इसके मालिक के हाथ सौंप रही हूँ।"

यह सुनकर कमला को हर्ष भी हुआ और विषाद भी। वह अपनी माँ से लिपट गई और रोने लगी—"माँ, तुम कहती थीं कि पिताजी संसार त्यागकर संन्यासी हो गये हैं, लेकिन मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम घर पर रहती हुई भी स्वयं संन्यासिनी बन गई थीं।"

पूर्व-निश्चित समय पर वेदान्ताचारी अपनी पत्नी के साथ हो लिया। उसने संन्यासी के वस्त्र त्यागकर एक सफेद धोती पहन ली। मन से वे एक बार फिर पति-पत्नी बन गये, लेकिन उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि यात्रा-भर वे ब्रह्मचर्य-व्रत का पूर्णतया पालन करेंगे और तीर्थ-यात्रा पूर्ण होने के उपरान्त भविष्य का मार्ग निश्चित करेंगे।

१० दिन में वे हरिद्वार पहुँच गये। जब सरनायकी ने गंगा के पवित्र जल में स्नान किया तो उसका चेहरा एकाएक चमक उठा।

उसका दुःख समाप्त हो गया। अब जब कभी वह बात करती तो उसके ओंठों पर एक मुस्कान नाचती रहती। यह देखकर उसके पति को आश्चर्य हुआ। उसने विस्मय से पूछा—"तुम्हारे हृदय में नवीन उल्लास का संचार होता हुआ दीख पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम १० साल छोटी बन गई हो। यह क्या बात है?"

उसने उत्तर दिया—"हाँ, मेरे सब दुःखों का अन्त हो गया है। अब हम दोनों ईश्वर की कृपा से सब कठिनाइयों से मुक्त रहेंगे।"

हरिद्वार में एक दिन रहकर वे ऋषीकेश चले गये। वहाँ उन्होंने गंगा-स्नान किया और तत्पश्चात् वे लक्ष्मणझूला की ओर बढ़ गये। वहाँ वे हिलते-जुलते पुल के नीचे रेती पर बैठकर बहुत देर तक प्रसन्नतापूर्वक बातें करते रहे। सरनायकी ने अपने पति से उन सब ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों का विवरण सुना जिनका उन्होंने अध्ययन और मनन किया था। सन्ध्या हो रही थी और अब वापिस लौटने का समय हो गया था। अतएव वे अंतिम डुबकी लेने के लिये गंगा में उतरे।

पत्नी ने प्रार्थना की—" कुल-परम्परा के अनुसार मेरी साड़ी के पल्ले को अपनी धोती के छोर से बाँध लीजिये और कृपया उपयुक्त मंत्रोच्चारण कीजिए।"

पति ने प्रसन्नतापूर्वक पत्नी का कहना मान लिया। दोनों ने एक साथ गोता लगाया, लेकिन जब वेदान्ताचारी ने पुनः अपना

सिर जल से बाहर निकाला तो देखा कि उसकी पत्नी उससे कई फुट आगे निकल गई है और आगे ही बढ़ती जा रही है। अतएव उसे पकड़ने के लिये उसने अपना हाथ बढ़ाया। पत्नी ने उसका हाथ पकड़ा और फिर धार में डुबकी लगा ली। वेदान्ताचारी ने उसे निकालने का प्रयत्न किया, लेकिन धार दोनों को बहा ले गई।

इस तरह से वेदान्ताचारी की प्रतिज्ञा न टूटी और साथ ही उसके हृदय की इच्छा भी पूरी हो गई।

▶▶▶

कुमारी का स्वप्न ▸▸▸

चिन्तामयी बीजगणित का एक कठिन प्रश्न हल करने में संलग्न थी। वह बी० ए० (आनर्स) द्वितीय वर्ष में पढ़ती थी। उसकी आयु १८ वर्ष थी, कनकलता-सी कोमल, पतला शरीर; लेकिन कोई खास खूबसूरत न थी। फिर भी उसकी मुख-मुद्रा आकर्षक थी। उसकी आकांक्षा थी कि एक विख्यात गणितज्ञ बनकर भारतीय नारी का मस्तक ऊँचा करे। उसके सहपाठी उसकी प्रखर बुद्धि पर विस्मय करते थे, लेकिन उनमें कुछ ऐसे भी थे जो ईर्ष्यावश उसमें नारी-सुलभ आकर्षण के अभाव का मजाक उड़ाने में चूकते न थे।

प्रश्न सरल प्रतीत होता था, लेकिन दो घंटे के निरन्तर प्रयत्न और बीस पन्ने कागज खर्च करने पर भी उसे कोई हल न सूझ रहा था। प्रतिदिन की भाँति रात के १० बजे होस्टल की बत्तियाँ बुझ गईं। वह अपनी कुर्सी से उठकर चारपाई पर बैठ गई। उसने बिस्तर नहीं बिछाया, लेकिन उसके सहारे पीठ टेककर प्रश्न के विषय में सोचती रही। थोड़ी देर में उसका प्रयत्न मन्द पड़ गया और वह शीघ्र ही सो गई। फिर भी उसका मस्तिष्क क्रियाशील बना रहा। विगत जीवन की घटनाएँ उसके स्मृतिपट पर नाचने लगीं।

चिन्तामयी के पिता को मरे तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे, लेकिन एकाएक उसको ऐसा लगा कि वे उसके समीप बैठे हैं। हर्षातिरेक से उसके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह होने लगा। जब उसने दाहिनी ओर दृष्टि डाली तो देखा कि उसकी माँ भी जो उसे दस वर्ष पूर्व अनाथ छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थीं, वहीं बैठी हैं। अब तो उसके आँसू एक अविरल स्रोत के समान प्रवाहित होने लगे। हर्ष और विस्मय से वह एकदम चीख उठी—"माँ ! माँ !..." और फिर उसने अपनी माँ को स्नेहालिंगन में जकड़ लिया।

माँ बोली—"बेटी चिन्ता ! तू अपनी मानसिक शक्तियों को इस प्रकार क्यों नष्ट कर रही है ? इससे क्या लाभ है ? जन्म से ही स्त्री के भाग्य में लिखा है कि वह अपने परिवार की देख-रेख करे। फिर क्या तेरा यह धर्म नहीं कि युवती होने पर विवाह करके सुखोपभोग करे ?"

इस पर पिता ने कहा—"मेरी बच्ची ! तू अपनी इस मूर्ख माँ की बात पर ध्यान मत दे। यह सब तो दुमकटी लोमड़ी की तरह हैं। कम-से-कम तू तो इनका एक अपवाद बनी रह। यह देखकर मुझे अपार हर्ष होता है कि तू शिक्षा में योग्यता से उन्नति कर रही है। जीवन भर मेरी यही इच्छा रही कि गणित की शोध में लगा रहूं, लेकिन मैंने अपने प्रोफेसरी के ढर्रे के काम में ही अपना अधिकांश समय नष्ट कर दिया। अब मेरी यही हार्दिक कामना और आशीर्वाद है कि जिसे मैं न कर सका उसे पूरा करने में तू सफल हो।"

बीच ही में टोककर माँ बोली—"बस, बस, बहुत हुआ। मैं तुम्हारे इस गणित के बारे में और अधिक नहीं सुनना चाहती। इसने जो मेरा हित किया है वह हमारी सात पीढ़ी तक के लिए काफी है। वह तो तकदीर अच्छी थी जो तुम नौकर थे और हर माह तनख्वाह मिलती जाती थी, नहीं तो इस गणित के पीछे तुम पागल हो जाते और हम सब भूखों मर जाते। दिन-भर कालेज में काम करने के बाद घर लौटने पर तुमने मुझ से कभी पाँच मिनट भी हँसकर बातें नहीं की, कभी बच्चों को नहीं खिलाया। लेकिन मैं यह पूछती हूँ कि सदैव इस गणित में लीन रहने का तुम्हें अन्त में क्या फल मिला?"

पिता ने चिढ़कर जबाब दिया, "बहरे को संगीत का आनन्द कैसे समझाया जा सकता है? अच्छा, तुम्हीं बताओ, हमेशा घर-बार की चिंता में फँसे रहने से तुम्हें क्या लाभ हुआ? मैं कम-से-कम यह तो कह सकता हूँ कि मैंने मानसिक चिन्ताओं से मुक्त रहकर शांति का जीवन व्यतीत किया। गणित इस सतत् परिवर्तन-शील नश्वर जगत की अमर आधार-शिला है। दुनिया में क्या कोई बुद्धिमान मनुष्य गणित को छोड़कर किसी अन्य विषय में अपना समय व्यतीत कर सकता है?"

माँ ने कुढ़कर जवाब दिया—"जी हाँ, यह ठीक है। गणित ही एक ऐसा अचूक साधन है जिससे स्पन्दनशील चेतन-प्राणी सरलता से जड़वत् हो जाता है। मैं तो अपने अनुभव से चिल्ला-चिल्लाकर कह सकती हूँ कि जिसे गणित या अध्यात्म-ज्ञान का

व्यसन हो उसे विवाह न करना चाहिए। ये विषय लड़कियों के लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं हैं।"

"क्यों नहीं? अगर स्त्री अपने वर्ग की महत्ता स्वयं कम करती है तो फिर क्या आश्चर्य यदि पुरुष भी उसकी अवज्ञा करे?"

"यह सब थोथी बातें हैं। हम स्त्रियों का जन्म ही बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन-पोषण करने के लिए होता है। अगर कोई बात हमारे इस कर्त्तव्य-पालन में बाधा डालती है तो निश्चय ही उसका परिणाम बुरा होगा।"

. "वाह! अगर तुम समाज-शास्त्र की कोई परीक्षा देतीं तो अवश्य ऊँची डिग्री प्राप्त करतीं!"

"यह दुनिया भर की डिग्रियाँ तुम्हें ही मुबारक हों। कागज की सनदों से कहीं पेट नहीं भरता। अगर संसार को यह मालूम हो जाय कि तुमने अपनी गृहस्थी किस तरह चलाई है तो फिर लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायँ।"

"तुम जानती हो कि तुम्हारे मरने के बाद सात वर्ष तक मैंने ही घर का सारा प्रबन्ध किया है। क्या वह तुम्हारे इन्तजाम से किसी तरह खराब रहा है? बेटी चिन्ता, तू ही सच-सच बता।"

"उससे पूछने की कोई जरूरत नहीं। यह तो आप ही जाहिर है। आपने बच्चों को होस्टल में दाखिल करा दिया और खुद घर पर गणित में मस्त रहे! रसोइये ने तुम्हें खूब लूटा। अच्छा बताओ, जब छुट्टियों में बच्चे घर आते तो क्या तुम उनकी कुछ

भी देख-रेख करते थे ? उलटे उन्हें ही तुम्हारी चिन्ता करनी पड़ती थी। क्या कुछ रुपये उनके हवाले करके ही तुम्हारी जिम्मेदारी खत्म हो जाती थी ?"

"अच्छा चिन्ता, अब तू ही साफ-साफ बता, कि माँ के मरने के बाद क्या तुम लोगों को कोई विशेष कष्ट हुआ ?"

चिन्ता ने उत्तर दिया—"पिता जी ऐसे सवाल का मैं क्या जवाब दूँ ? दुनियाँ में माँ के बिना बच्चों का कौन ठिकाना ? सब संसार सूना-सूना-सा दिखलाई पड़ता है। लेकिन माँ, तुमने पिता जी पर जो आरोप लगाये हैं वे भी अनुचित हैं। सिवाय इसके कि तुम्हारी प्रेमपूर्ण सुखद छाया न थी, हमें और किसी प्रकार का कोई अभाव न था। हम लोग खूब रुपया खर्च करते। हाँ, उन गोपनीय विषयों में, जिनके सम्बन्ध में केवल तुम्हीं सलाह दे सकती थीं, हम लोग घबड़ाये-घबड़ाये और परेशान रहते थे। लेकिन पिता जी का प्रेम हमें सदैव प्राप्त रहा।"

"ठीक है बेटी, यह तो सृष्टि के आरम्भ से ही माँ का दुर्भाग्य रहा है ! हम तुम्हें जन्म देती हैं, पालन-पोषण करती हैं, लेकिन तुम लोग पक्ष उसी पिता का लेती हो जिसे तुम्हारा कोई भी बोझ नहीं ढोना पड़ता"।

"अपने अज्ञान में तुम लड़की से नाराज होने की मूर्खता मत करो। संसार में सब प्रकार के जीवन की प्रथम आवश्यकता है —'स्वतंत्रता'। भोजन और वस्त्र का प्रश्न बाद में आता है। बच्चे उन माता-पिताओं से प्रेम नहीं करते जो उनकी स्वतंत्रता पर

इसलिए अंकुश लगाए रहते हैं कि वे उन्हें भोजन और वस्त्र देते हैं।"

"मैंने आपका यह व्याख्यान बहुत बार सुन रखा है। मेरे मरने के बाद तुमने लड़कियों को पूरी आजादी दे दी। जानते हो उसका क्या नतीजा हुआ? किन्नरी को देखो। पहले तो उसने रेडियो में नौकरी कर ली और फिर जात-बिरादरी छोड़कर न जाने किस अजनबी से शादी कर ली। अब उसने उससे भी झगड़ा कर लिया है और अकेली मुसीबत की जिन्दगी बिता रही है। कौन जाने चिन्ता की तकदीर में क्या लिखा है?"

"किन्नरी कम-से-कम खा-कमा सकती है, स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकती है। अच्छा, अब तुम उसकी बड़ी बहन मोहनांगी के बारे में क्या कहती हो? तुम्हें मालूम है कि तुमने उसकी शादी के लिए कैसी धूम मचाई थी और कितनी तकलीफ सही थी। तुम उस मक्कार रिश्तेदार की बातों में आ गईं और १४ वर्ष की अवस्था में ही उसकी शादी एक निकम्मे लड़के से कर दी। विवाह के पहले सुना था कि उसके पास एक लाख रुपये की सम्पत्ति है, लेकिन भाँवर पड़ने के सबेरा होते-होते वह न जाने कहाँ विलीन हो गई? चार वर्ष में उसके चार बच्चे हो गये और अठारह वर्ष की अवस्था में वह विधवा हो गई। जिस गणित से तुम घृणा करती हो मैंने उसी की एक पाठ्य-पुस्तक लिखी थी। उससे मुझे पाँच हजार रुपये मिले। इस रकम से मैंने उसके लिए एक मकान और सात एकड़ जमीन खरीद दी। किन्नरी भी उसकी सहायता

कर रही है। अगर उसको इस तरह मदद न मिलती तो उसका सर्वनाश ही हो गया था !"

"इसमें मेरा क्या दोष है ? तुम अपने कमरे में बैठे-बैठे गणित लगाते रहो, फिर मुझे तो वर मिल चुका। वैसे मुझे ऐसी आशा न थी कि मेरे सगे चचा ही इस तरह धोखा देंगे। लेकिन किया क्या जाय ? 'करमगति टारे नाहिं टरी'। जो होना था सो हुआ। 'विधि का लिखा को मेटनहारा।' खैर उसके बच्चे तो हैं। परमात्मा की कृपा से किसी-न-किसी तरह बड़े हो ही जायेंगे। लेकिन तुम बताओ, चिन्ता से कौन शादी करेगा ?"

"अगर परमात्मा मोहनांगी के बच्चों की परवाह कर सकता है तो क्या हम चिन्ता की शादी का भार भी उसपर नहीं छोड़ सकते ? वास्तव में बात यह है कि हम प्रतिदिन की परिचित कठिनाइयों को तो सरलता से झेल लेते हैं, लेकिन जब कोई नये ढंग की मुसीबत पैदा हो जाती है तो हम घबड़ा जाते हैं। दुनियाँ में मुसीबतों से कोई नहीं बच सकता। एक-न-एक मुसीबत सबको घेरे रहती है। हमें कठिनाइयों पर विजय पाने की या उन्हें सहन करने की आदत डालनी चाहिये। चिन्ता के विषय में परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं। उसका गणित उसे हर प्रकार की कठिनाई का सामना करने की शक्ति देगा। जहाँ उसके हाथ में गणित की कोई नई किताब आई कि वह संसार को ही भूल जायगी। अगर तुम मेरी बात झूठ मानती हो तो स्वयं चिन्ता से पूछ लो। क्या तुम जानती हो कि पिछले तीन वर्षों में उसने स्वयं

हम दोनों में से किसी के बारे में कितनी कम बार सोचा है ? आज भी हमारी याद उसने तब की है जब वह बीजगणित के एक प्रश्न को हल न कर सकने के कारण खीझ रही है।"

पिता की इस चोट से चिन्तामयी लजा गई और उनके दोनों हाथों में अपना मुँह छिपा लिया। वह उनके आरोप को काटना चाहती थी, लेकिन चौंककर एकदम जाग गई। उसने बिस्तर बिछाया और लेट गई। लेकिन उसे नींद नहीं आई। बहुत देर तक वह अपने स्वप्न पर विचार करती रही। उसके मनश्चक्षुओं के समक्ष उसकी माँ की स्नेहमयी, लेकिन चिन्ता-जर्जर आकृति झूलती रही। वह सोचने लगी, मेरी माँ कितनी त्यागमयी है, उसने अपना समस्त जीवन हम बच्चों के लिए उत्सर्ग कर दिया। चिन्तामयी को आज अपनी माता की मुखमुद्रा पर एक नवीन सौंदर्य तथा नव-वात्सल्य की आभा दृष्टिगोचर हो रही थी। अपने चारों ओर पिता के वरद-हस्त की छत्रछाया का सुखद अनुभव करके वह पुलकायमान हो गई। वह मन-ही-मन कहने लगी, कैसे निष्काम हैं मेरे पिता जो कमलपत्र के जल-बिन्दु के समान संसार में रहकर भी उसमें लिप्त नहीं हुए। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसे नींद आ गई। जब सवेरे वह जागी तो ६ बज चुके थे, लेकिन जिस प्रश्न ने उसे पिछली रात परेशान कर रखा था वह बिना किसी विशेष प्रयत्न के हल हो गया मानो किसी ने जादू कर दिया हो। यह भी उस स्वप्न से कम आश्चर्य की बात न थी।

▶▶▶

मातृ भूमिकी सेवा ▸▸▸

रामचन्द्र शुक्रवार के नाम से घबराता था। और उस शुक्रवार को तो हमेशा से भी ज्यादा कातने वाले आ गये थे। ३०० आदमियों के कते हुए सूत की जाँच करना, उसे तौलना और फिर उन सब को रूई बाँटना—यह सब बड़ी मेहनत का काम था। उस दिन उसे लगातार ३ बजे शाम तक लगा रहना पड़ा। अब उसे शारीरिक श्रम से भी अधिक मानसिक कष्ट हो रहा था। काम समाप्त करके जब वह हिसाब की बहियों का तकिया लगाकर फर्श पर ही लेट गया तो ऐसा मालूम होता था कि वह थकान से बिलकुल चूर हो गया है।

अगर उन ३०० कातने वाली गरीब स्त्रियों में से एक भी संतुष्ट होकर लौटती तो रामचन्द्र को तसल्ली होती। लेकिन होता यह था कि वे सब की सब असन्तुष्ट ही रहती थीं। जब वह उनकी खिन्न मुख-मुद्रा का ध्यान करता तो अपने को ही दोषी पाता। पलापट्टी में चरखा-संघ का केन्द्र स्थापित होने के पूर्व गाँव की ये किसान स्त्रियाँ अपने को नितान्त असहाय अनुभव करती थीं और चरखा संघ को धन्यवाद देती थीं कि अब उसकी कृपा से वे अपने बेकार

समय का सदुपयोग करके अपने पतियों की अल्प आय में वृद्धि कर रही थीं। लेकिन उन्हें यह देखकर निराशा होती थी कि हफ्ते भर चर्खे की बेगार करने पर भी उन्हें प्राप्त होते थे केवल दस आने। रामचन्द्र को उनकी यह पीड़ा सह्य न होती।

हर शुक्रवार को समवेदना की यह भावना उसे अधिकाधिक व्यग्र करती। वह सोचता—"यह तो ठीक है कि यह काम बिलकुल इन्हीं लोगों के हित के लिये है। अगर इन्हें कताई से यह आमदनी न हो तो इनकी दशा और भी बुरी हो जायगी। फिर भी अगर सप्ताह भर के काम का पारिश्रमिक केवल दस आने मिलता है तो उनको शिकायत होना स्वाभाविक है। हम उनसे किसी कृतज्ञता की कैसे आशा कर सकते हैं? अगर ये यह सोचें कि हम इनकी विवशता का लाभ उठा रहे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन इन लोगों की सहायता का कोई दूसरा अधिक अच्छा उपाय भी तो समझ में नहीं आता। जो खादी की निन्दा करते हैं वे कोई दूसरा व्यावहारिक हल नहीं बताते। तो भी इस श्रमपूर्ण तथा समय-साध्य कार्य के लिये इतना कम पारिश्रमिक देना किसी तरह उचित नहीं कहा जा सकता। अगर कुछ समय बाद इनकी मजदूरी बढ़ाने की कोई निश्चित संभावना हो तो हम इनसे यह भी कह सकते हैं कि भाई धैर्य रखो। लेकिन जब हम स्पष्ट जानते हैं कि इस काम से इन्हें पेट भर रोटी देना भी नामुमकिन है तो हमारा क्या कर्तव्य हो जाता है। मैं इस काम को छोड़ भी नहीं सकता, क्योंकि दीन-हित-सेवा का इससे अधिक अच्छा कोई उपाय मुझे

नहीं मालूम। इनके नेत्रों में बसे हुए दरिद्रनारायण के दर्शन के बाद इन्हें मैं कैसे त्याग सकता हूँ? भगवान् ही जाने कि ये बेचारे अपनी दरिद्रता शान्तिपूर्वक कैसे सहन करते हैं! हे ईश्वर! अगर कहीं मेरी कमला को केवल चरखा चलाकर जीवन-यापन करना पड़ता तो......... ।"

जब वह इस प्रकार सोच-विचार कर रहा था, उसकी पत्नी कमला आ गई। वैसे उसे सुन्दर तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसकी मुखाकृति आकर्षक थी। उसके शरीर से यौवन की कान्ति फूट रही थी। नेत्रों में प्रेम की स्निग्धता विद्यमान थी। उसे निहारकर रामचन्द्र क्षण भर को अपनी चिन्ताएं भूल गया।

उसने पूछा—"क्या तुम्हें कुछ चाहिए? बच्चे कहाँ हैं? उनकी आवाज नहीं सुनाई पड़ रही।"

पत्नी ने जवाब दिया—"इतनी गर्मी में वे बिना सोये कैसे रह सकते हैं? मैं भी अब तक आराम कर रही थी। आपके सिर पर तो राष्ट्र-सेवा का भार है! भला, आप कैसे विश्राम कर सकते हैं!"

चौंककर चटपट उसने जवाब दिया, "छिः छिः। यह हँसी की बात नहीं है। जब ये बेचारी गरीब औरतें इन्तजार कर रही थीं तो मैं और कर ही क्या सकता था?"

उसने प्रश्न किया—"ये सब इसी एक दिन क्यों भीड़ लगा लेती हैं?"

रामचन्द्र ने दुःख-भरे स्वर में उत्तर दिया—"बेचारी स्त्रियाँ! आज साप्ताहिक बाजार का दिन है। कल रात ये काफी देर तक कातती रही होंगी, नहीं तो अपने हिस्से का काम पूरा न कर पातीं।"

कमला और अधिक विवाद न करना चाहती थी। वह बोली—"ठीक है, मुझसे क्या मतलब? तुम जानो तुम्हारा काम जाने। चलूँ, मैं अपना काम देखूँ। आप मेहरबानी करके दो सेर तिल का तेल मँगवा दीजिए।

"तेल तो पिछले सोमवार को ही आया था!" रामचन्द्र ने विस्मय से कहा।

"तो मैं क्या उसे पी गई?" कमला ने बिगड़कर जवाब दिया। बच्चों ने और मैंने सारे बदन पर मला, उसी में खाना बना। फिर तुम क्या सोचते हो, दो सेर तेल आखिर कितने दिन चलेगा?"

उसने संक्षेप में उत्तर दिया—"मुझे इससे मतलब नहीं कि तुम तेल कैसे खर्च करती हो। लेकिन अब मेरे पास पैसा नहीं है। हमें मितव्ययिता से रहना होगा।"

"तो क्या अभी तक हम लोग नवाबों की तरह रह रहे हैं? क्या तुम चाहते हो कि मैं बिना चावल और तेल के ही गृहस्थी चलाऊँ?" कमला बरस पड़ी।

रामचन्द्र ने तर्क किया—"इन ३०० कातनेवालों को मैंने हफ्ते भर की मजदूरी दस आना दी है। ये लोग अपना काम कैसे चलाती हैं?"

"इनके पति कमाते होंगे"—पत्नी ने उत्तर दिया।

पति ने पलटकर जवाब दिया—"उन्हें चार आने रोज से ज्यादा नहीं मिलते और लगभग आधे दिनों वे बेकार रहते हैं। संख्या में हमारे परिवार से भी बड़े कुटुम्ब महीने में १०) भी नहीं पाते। मुझे तो ३०) मिलते हैं। फिर भी हमारा पूरा नहीं पड़ता।"

"वाह! क्या कहना! क्या शानदार आमदनी है!' कमला ने मजाक उड़ाते हुए कहा। "क्या दुनिया के सब आदमी अपनी तनख्वाह का अन्दाज इसी तरह लगाते हैं?"

रामचन्द्र चिढ़ गया और कठोरता से बोला—"अगर सब लोग मेरी तरह सोचने लगें तो हमारे देश की ऐसी दयनीय दशा न रहे जैसी आजकल है। क्या देश-सेवकों का यह कर्तव्य नहीं है कि कम-से-कम गरीबों की तरह जीवन-यापन तो करें?"

"जी हाँ, अवश्य!" कमला ने मुस्कराकर जवाब दिया। "अंधा ही अंधे को रास्ता दिखला सकता है! देश की गरीबी तुम जैसे निर्धन कार्यकर्ताओं के द्वारा ही मिट सकती है!"

रामचन्द्र ने कठोरता से कहा—"और दूसरा कौन इस तरह काम करेगा? धनी लोग केवल अपने सुख की चिन्ता करते हैं और मस्त पड़े रहते हैं। जो गरीब अज्ञान हैं वे कुछ समझते-बूझते नहीं, निस्सहायता का अनुभव करते हैं। अब हम जैसे लोगों को ही जो इन दोनों के बीच में हैं देश का कार्य करना है।"

कमला ने आत्मसमर्पण का भाव प्रकट करते हुए कहा—"अब ईश्वर जरा आराम कर ले, उस बेचारे का भार तुम अपने ऊपर ले रहे हो। अस्तु, विधाता ने धन-सम्पत्ति मेरे भाग्य में लिखी ही नहीं है, मैंने भी बरसों से इसका रोना छोड़ दिया है। परमात्मा मेरे पति को सुरक्षित रखे, मुझे इसी में संतोष है। तो भी जब मैं अपनी प्यारी शारदा और कृष्णा के भविष्य की बात सोचती हूँ तो मुझे कष्ट होता है।"

बीच ही में बात काटकर रामचन्द्र बोला—"क्या तुम सोचती हो कि उनकी मुझे चिन्ता नहीं है ? लेकिन इसका उपाय क्या है ? इसीलिए महात्मा गांधी का कहना है कि राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को शादी नहीं करनी चाहिए।"

"लेकिन इस उपदेश को शादी से पहले सोचा होता !"—कमला ने उपहास किया।

अपनी खीझ को दबाते हुए रामचन्द्र बोला, "उन्होंने यह भी कहा है कि शादी के बाद भी पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। अगर हम लोगों ने उनका आदेश माना होता तो अब कितने सुखी रहते !"

कमला को यह बुरा लगा। वह बोली—"ऐसी अनुचित और अशुभ बात अपने मुँह से मत निकालो। प्यारी शारदा और कृष्णा के बिना हमारे जीवन में आनन्द कहाँ ? बच्चे होना या न होना क्या कोई अपने अधिकार की बात है ? देखते नहीं हो, निस्संतान

माता-पिता एक बालक का मुँह देखने के लिए बनारस से रामेश्वर तक तीर्थ-तीर्थ मनौती मनाते फिरते हैं।"

पति अपनी बात पर डटा रहा। उसने कहा—"अगर वे मूर्खता करते हैं तो क्या हमें भी उनकी नकल करनी चाहिए? अब अगर बच्चे पैदा हो गये हैं तो उन्हें तो प्यार करना ही पड़ेगा। लेकिन अपने देश की वर्तमान दशा मे बच्चों को जन्म देकर उन्हें दासता और दरिद्रता का भागी बनाना निश्चय ही पाप है।"

कमला ने सिर हिलाकर जवाब दिया—"ठीक है, चाहो तो अब तुम नया शास्त्र बना डालो। ये सब तुम्हारी थोथी बातें हैं। तुम पूरे साधु बन जाते; तुम्हें रोका किसने था? अगर इच्छा हो तो तेल मँगवा देना; मैं तो जाती हूँ।"

वह बड़बड़ाती हुई चली गई।

उसकी अंतिम बात रामचन्द्र को कटु प्रतीत हुई। वह अकसर सोचा करता कि उन दोनों के स्वभाव में कितना अंतर है। उसकी यह बलवती इच्छा रहती कि जीवन के महान् तत्वों तथा सिद्धान्तों का चिन्तन और पालन करे। कमला को ऐसी कोई चिन्ता न थी; लेकिन व्यवहार में वह जीवन के सीधे-सच्चे और सकरे रास्ते पर अधिक आत्म-विश्वास और अधिक सतर्कता से चलती। रामचन्द्र की यह तीव्र इच्छा थी कि वह अपने चारों ओर रहनेवाले निर्धन किसानों का-सा जीवन व्यतीत करे। प्रतिदिन के जीवन में कमला उसके आदेशों का अक्षरशः पालन करती, लेकिन जब कभी वह

एक दाल या तरकारी कम बनाती तो रामचन्द्र की खिन्नता उसकी मुख-मुद्रा पर बरबश व्यंजित हो जाती। इसके विपरीत अगर पति और बच्चों को भर-पेट भोजन मिल जाता तो कमला इसी संतुष्ट हो जाती। उसे अपनी कभी चिन्ता न होती। अपने यौन-सम्बन्ध के जटिल प्रश्न के विषय में भी उनका व्यवहार इसी ढंग का था। एक दिन रामचन्द्र 'यंग इंडिया' के किसी अंक से नवविवाहित दम्पति के लिए गांधी जी का उपदेश पढ़कर कमला को सुनाने लगा। कमला को यह भद्दा लगा और ऐसी बातें सुनकर वह कुछ शर्मिन्दा होने लगी। लेकिन उस दिन से वह अलग सोती और पूर्ण संयम का जीवन व्यतीत करती। चार-चार महीने रामचन्द्र भी उच्च विचारों के लोक में रहता और पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता; लेकिन किसी दिन उसकी प्राकृतिक कामेच्छा उसके मानसिक दुर्ग को एकाएक ढहा देती। कमला की एक सामान्य मुस्कान, प्यार का एक शब्द या आकस्मिक स्पर्श-मात्र जिसकी ओर अन्य दिन वह ध्यान भी न देता, अचानक बिजली के तार का-सा काम कर जाता और वह वासना के आवेश से अभिभूत हो जाता।

जब कभी रामचन्द्र इन सब घटनाओं का स्मरण करता तो उसे घोर निराशा होती, महात्मा गान्धी की बातों से भी कुछ चिढ़ मालूम होती। वह सोचता—"महात्मा जी तो किसी तरह आत्म-विकास की सर्वोच्च चोटी पर पहुँच गये हैं। अब वह दूसरों को भी अपने पीछे-पीछे बुला रहे हैं। अगर उनकी पुकार का उत्तर

नहीं देते तब तो आत्मा ही हाथ से निकली जाती है; अगर उत्तर देते हैं तो मालूम होता है कि उस दीर्घ कठिन रपटीली राह को पार करना नितान्त असम्भव है। क्या उनके अनुयायियों की यही गति होनी है कि सदैव संघर्ष करते रहें, न तो चोटी तक पहुँच सकें और न मार्ग के मनोहर विश्राम स्थलों का ही आनन्द ले सकें!" इस स्थिति का अनुमान करके वह काँप गया।

अन्य देश-सेवकों के समान ही रामचन्द्र के विषय में भी लोग अपनी-अपनी धारणा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से सोचते थे। जो यह जानते थे कि उसने महात्मा जी की पुकार पर कालेज के तृतीय वर्ष में ही अपनी पढ़ाई छोड़ दी थी, उसके त्याग को सराहना करते थे। दूसरे लोग कहते थे—"किसी अच्छी जगह के लायक तो वह है नहीं, राष्ट्रीय कार्य के लिए एकत्र जनता के धन से अपना पेट पाल रहा है।" उसके संबंधी कहते थे—"मूर्ख आदर्शवादी है; अपना हित-अहित भी नहीं समझता।" चर्खा-संघ के अधिकारी उसकी शंकाओं तथा आत्म-चिन्तन की बातों को सुनकर आपस में कानाफूसी करते थे। कमला को यह विश्वास न होता था कि उसके दिमाग का कोई पेच ढीला नहीं है। लेकिन उसने निश्चय कर लिया कि अगर ऐसा है तब तो वह उसके प्रेम और निष्ठापूर्ण सेवा का और भी अधिक अधिकारी है। कोई ऐसा न था जो उसकी शंकाओं को शान्ति और सहानुभूति से सुनता और उनका समाधान करता या उसे कोई विश्वसनीय उचित मार्ग सुझाता।

जब उसके मस्तिष्क में अस्पष्ट विचारों का यह संघर्ष चल रहा था १९२९ का कांग्रेस का लाहौर-अधिवेशन होने वाला था। जैसे-जैसे अधिवेशन का महत्वपूर्ण दिन निकट आता जाता था उसकी पुरानी परेशानियों का स्थान नई चिन्ताएँ ले रही थीं। वह सोचता—क्या कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर देगी? अगर पास हुआ तो क्या एकमत से पास हो जायगा? कांग्रेस प्रस्ताव को कार्यान्वित कैसे करेगी? कभी-कभी वह सोचता कि समस्त देश स्वतंत्रता की अंतिम लड़ाई लड़ने के लिए तैयार है। कभी-कभी वह अविश्वास के ढंग से सोचता—वकील अपनी वकालत न छोड़ेंगे, विद्यार्थी कॉलेज का बॉयकाट न करेंगे, करबंदी आन्दोलन व्यावहारिक नहीं है। ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ करके वह निराशा के सागर में गोते लगाने लगता। वह अपनी पत्नी को समाचार तथा उनकी व्याख्या जोर-जोर से पढ़ कर सुनाता। एक दिन पत्नी ने हँसी उड़ाते हुये कहा—"अभी तुम कांग्रेस के प्रेसीडेंट तो हो नहीं गए! इस तरह परेशान क्यों होते हो?" इस पर वह इतना बिगड़ा कि दिन भर उससे बोला नहीं। रामचन्द्र नमक-सत्याग्रह के लिए नाम लिखाने वाले प्रथम दल के स्वयंसेवकों मे था। चर्खा-संघ के अधिकारियों ने उसे रोकना चाहा, लेकिन वे सफल न हुए। जब उसका नाम लिख गया तो उसका मस्तिष्क सब प्रकार की शंकाओं से मुक्त हो गया और वह बिलकुल बदल गया। उसे सफलता की पूरी आशा थी। वह हमेशा मुस्कराता हुआ प्रसन्न रहता जैसा पहले कभी नहीं होता था।

लेकिन उसकी इस प्रसन्नता से कमला की मुखाकृति पर चिन्ता के बादल मँडराने लगे। उसे इस बात का दुःख नहीं था कि उसका पति सत्याग्रह-आन्दोलन में जा रहा है। वह जानती थी कि वह उसे रोक नहीं सकती। उसके माता-पिता बहुत गरीब थे। उनके पास जो कुछ थोड़ी-बहुत पूँजी थी उसे वे उसकी शादी में खर्च कर चुके थे। वे सोचते थे कि यह उनका परम सौभाग्य है जो रामचन्द्र जैसा अच्छा वर पा गए। जब वह पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गया तो उन्हें एक धक्का-सा लगा और वे इसे एक महान् विपत्ति मानने लगे। जब कभी कमला उनके यहाँ जाती तो वे जोर-जोर से अफसोस मनाते और उसके पति को कोसते। कमला को उनका यह व्यवहार इतना अपमानजनक मालूम हुआ कि पिछले तीन वर्ष से उसने उनके यहाँ जाना ही छोड़ दिया। अब वह उनकी शरण में कैसे जाय? एक दूसरा मार्ग यह था कि वह रामचन्द्र के भाई के पास जाकर रहे। वह मदरास के सेक्रेटरिएट में १००) माहवार का क्लर्क था। उसका परिवार बड़ा था। उसकी पत्नी कहती-फिरती थी कि कमला ही बुद्धू है नहीं तो हमारे जेठ जी इस तरह का व्यवहार न करते।

कमला आशा करती थी कि उसका पति उसका कुछ प्रबन्ध करेगा अवश्य, लेकिन वह संसार की हर चीज से उदासीनता प्रकट कर रहा था। वह सोचती कि जब तक वह जेल में रहेगा चर्खा-संघ उसके वेतन का कुछ अंश उसे देता रहेगा और इसके सहारे वह किसी तरह अपने दिन काट देगी।

कमला ने वाद-विवाद को आगे नहीं बढ़ाया। उसने प्रश्न किया—"मेरे लिए क्या आज्ञा है ?" "क्या तुम अपने पीहर में नहीं रह सकतीं ?" पति ने पूछा। वह फूट पड़ी—"तुम उनकी वर्तमान परिस्थिति अच्छी तरह जानकर भी इस तरह का प्रस्ताव कर रहे हो ! मैं भी सत्याग्रह में भाग लूँगी।"

उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए रामचन्द्र ने कहा—"बेवकूफी की बातें मत करो। तुम पागल हो गई हो या हँसी कर रही हो ?"

कमला ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं। सत्याग्रह में मैं क्यों न जाऊँ ?" क्या तुम्हारे आन्दोलन में स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं है ? कल ही तुम अखबार जोर से पढ़-पढ़कर समाचार सुना रहे थे कि गुजरात में हजारों स्त्रियों ने स्वेच्छा से नाम लिखाया है।"

उसने मंद स्वर में कहा—"अगर बच्चे न होते तो तुम भी जा सकती थीं। अब तुम्हारे बिना उनकी देखरेख कौन करेगा ?"

कमला ने अपना पक्ष समर्थन करते हुये तर्क किया—"तुम्हारी अपेक्षा मैं ही क्यों उनकी ज्यादा चिन्ता करूँ ? जो होना होगा सो होगा। उनकी ईश्वर रक्षा करेगा।"

रामचन्द्र से कुछ कहते न बना। उसने यह कभी नहीं सोचा था कि कमला उस पर इस तरह विजयी हो जायगी। यह कहने का वह साहस कर सकता था कि स्त्री और पुरुष दोनों के अधिकार समान नहीं हैं। उसने आवेश पर अंकुश लगाया। वह कमरे में चला गया और सोचने लगा।

जब वह परास्त होकर भाग खड़ा हुआ तो कमला का हृदय कुछ मुलायम पड़ गया। वह अपने मन से कहने लगी—यह विद्रोह की भावना मुझमें कब और कहाँ से आ गई ? क्रोध सब बुराइयों की जड़ है। उस अप्रिय घटना के लिये वह अपने को ही दोषी मानने लगी।

जब रामचन्द्र रात को भोजन कर रहा था तो वह मुस्कराई और धीरे से बोली—"तीसरे पहर मैं थकी हुई थी, कुछ अंडबंड बोल गई। तुम किसी बात से परेशान मत हो। मेरे पास अभी एक-दो जेवर बाकी हैं। अगर तुम उन्हें बेच दो और कोइमबिटूर में एक सस्ती-सी कोठरी किराये पर ले दो तो मैं वहाँ रहकर बच्चों की देखरेख करती रहूँगी।"

वेदारण्यम् की उस महत्वपूर्ण पैदल-यात्रा में रामचन्द्र अपने साथियों से मिलता-जुलता नहीं, वह एक असाधारण मौन धारण किये रहता। मार्ग में स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाएँ होतीं, स्वयंसेवकों की देश-भक्ति और त्याग-भावना की प्रशंसा में स्थानीय नेता उन्हें आसमान पर पहुँचा देते। यह देखकर रामचन्द्र को संकोच होता। एक बार एक साथी बोला—"रामचन्द्र ! तुम्हारा ध्यान तो कहीं दूर किसी दूसरी चीज पर है। यह क्या बात है ?" रामचन्द्र ने इसका कुछ उत्तर न दिया। अगर वह कहता कि वह दो सौ मील दूर बैठी हुई कमला को देख रहा है तो उसका कौन विश्वास करता ?

◄◄◄

जेल-जीवन ▸ ▸ ▸

रमैया और सुब्बाराव नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन में साथ-साथ सम्मिलित हुए और दोनों को साथ ही एक वर्ष का कठिन कारावास-दंड मिला। पहले उन्हें राजमहेन्द्री सेन्ट्रल जेल में रखा गया और बाद में कन्नानोर में। दोनों ग्रेजुएट थे, मध्यवित्त के दो सम्भ्रान्त परिवारों के नवयुवक; उन्हें 'बी' क्लास में रखा गया।

उनके बन्दी-जीवन के पहले दो महीने खुशी-खुशी कट गए। भारत में शायद ही कोई ऐसा हिन्दू युवक होगा जिसे पारिवारिक चिन्ताएँ न रहती हों। इन दोनों के भी बीबी-बच्चे थे। लेकिन इससे क्या? वे सोचते—"कोई-न-कोई उनकी देखरेख कर ही लेगा। अगर कोई कुछ सहायता न करेगा तो भी वे लोग अपने जेवर बेचकर किसी-न-किसी तरह काम-धाम चला ही लेंगे। इस पवित्र स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना हमारा परम कर्तव्य है। हम उससे कैसे विमुख हो सकते हैं।" इस तरह तर्क करके वे अपने परिवारों की चिन्ता से मुक्त हो जाते। उनको एक ही परेशानी थी कि कहीं ऐसा न हो कि उन दोनों को अलग करके भिन्न-भिन्न जेलों में भेज दिया जाय। साथ-साथ कन्नानोर पहँचने पर उनकी

यह चिन्ता भी शान्त हो गई। उन्हें असीम हर्ष हो रहा था। कन्नानोर जेल प्राकृतिक सौन्दर्य का एक सुरम्य स्थल है। वह सघन वन से आच्छादित एक शैल शिखर पर स्थित है। चारों तरफ खूब गुलाब खिले हुए हैं। प्रातः-सायं पक्षियों के कलरव से कैदी मुग्ध हो जाते। अधिकतर वार्डर मलयाली थे—शरीर से सुन्दर, बोलचाल में मधुर और व्यवहार में शिष्ट। दोनों मित्र सरकार की मूर्खता का उपहास करते न थकते। यह सरकार कैसी पागल है जो इस सुरम्य स्थान में हमें एक वर्ष के लिए बन्दी बनाकर रखने में सोचती है कि उसने हमें दंड दिया है। प्रातःकाल कोठरी से बाहर निकाले जाने के क्षण से लेकर संध्या के ६ बजे तक जब वे फिर ताले में बन्द कर दिए जाते, दोनों मित्र बिलकुल एक साथ रहते। बन्द हो जाने पर भी रमैया मनोहर गीत गाता और उसका मित्र उसका आनन्द लेता रहता।

दिन में वे पढ़ते, चर्खा चलाते और वाद-विवाद करते। साधारण बंदी उनके अबाध उल्लास से प्रफुल्ल हो जाते। दोनों मित्र उन लोगों से हृदय खोलकर मिलते और भाई-चारे का व्यवहार रखते। चूँकि वे अपने खाने के बारे में कोई शिकायत न करते थे और जेल के नियमों का सहर्ष ठीक-ठीक पालन करने थे, जेल के अधिकारी भी उनका सदैव ख्याल रखते थे।

अकसर वे दोनों आपस में इस तरह बातें करते—"जब हम लोग विक्टोरिया हॉस्टिल में पढ़ते थे तब भी इतने प्रसन्न और सुखी न थे। यहाँ जलवायु को दूषित करनेवाली कूयम नदी

नहीं है, परीक्षाएँ नहीं हैं जिनके लिए हमें रात-दिन पढ़कर आँखें फोड़नी पड़ें। कैसा अच्छा मौका मिला है! हम जो चाहें सो पढ़ सकते हैं, जो विषय रुचिकर हो उसी पर विचार-विनिमय कर सकते हैं और पूर्णतया चिन्तामुक्त जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"

उनके हर्ष से देवताओं को ईर्ष्या हुई। एक दिन सुब्बाराव ने रमैया से कहा—"मेरी तबियत ठीक नहीं"। रमैया दौड़ा-दौड़ा गया और डाक्टर साहब को लिवा लाया। सुब्बाराव को हल्का ज्वर बतलाया गया। जेल में रोग के ठीक-ठीक निदान को बहुत महत्व नहीं दिया जाता। बोतलों पर १ से लेकर २० तक नम्बर डालकर कुछ रंग-बिरंगे मिक्चर रखे रहते हैं। डाक्टर उन्हीं में से कोई एक मरीज के लिए लिख देता है। सुब्बाराव को बोतल नं० ३ से एक खुराक दिलवाकर वह चला गया।

प्रतिदिन की भाँति जब वे संध्या समय ताले में बंद किये जा रहे थे तो सुब्बाराव कुछ परेशान-सा था; लेकिन उसने अपने को स्थिर किया और रमैया से बोला—"भैय्या! आज त्यागराजा के कुछ अच्छे भक्ति के भजन गाओ।" सामान्यतः सुब्बाराव को ईश्वर में कोई खास विश्वास न था। वह कहा करता था—"दुनिया में ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते। ईश्वर भी उन्हीं में से एक है। हम उसे देख नहीं पाते। जिसे हम देख नहीं सकते उसके विषय में कुछ सोचना भी व्यर्थ है।" लेकिन फिर भी उस दिन जब उसने भजन सुने तो उसका हृदय द्रवीभूत हो गया। वह इस विशाल ब्रह्मांड की अद्‌भुतता से विस्मित हो गया। उसे

मानव-जीवन के क्लेशों का अनुभव हुआ, अपनी नगण्यता का भान हुआ। उसका हृदय पीड़ा से धक-धक करने लगा।

आश्चर्य-चकित वह सोचने लगा—"आज इस संध्या वेला में मेरे मन में इस तरह के विचित्र भाव क्यों आ रहे हैं ? कहीं-न-कहीं मेरा ही कुछ गड़बड़ हाल है।

दूसरे दिन से वह बिस्तर पर पड़ा रहा। रमैया सतर्कता से उसकी परिचर्या करता और हर वक्त उसी के पास रहा करता। बाहर के लोग यह अनुमान नहीं लगा सकते कि जेल में छोटे-से-छोटे काम कराने में भी कितनी कठिनाई होती है। जरा-सा गरम पानी लाने के लिये उसे कई-कई वार्डरों से आग्रह करना पड़ता। छोटे-मोटे कामों के लिये ब्लॉक का मेहतर ही मिल सकता था। लेकिन मेहतर क्या-क्या कर सकता है ? जब रमैया थक गया तो उसने एक दिन सुब्बाराव के कपड़े मेहतर को धोने के लिये दे दिये। इससे सुब्बाराव के चेहरे पर इतनी घृणा के भाव दिखाई देने लगे कि रमैया को उन्हें वापस लेकर स्वयं ही धोना पड़ा। इस तरह से अपने रुग्ण मित्र की सेवा के प्रयत्न में रमैया को अवर्णनीय यातनाएँ भोगनी पड़ीं। अगले चार दिनों में बोतल नं० ४,५ और ६ की दवाएँ दी गईं, लेकिन बुखार लगातार बढ़ता ही गया। पाचवें दिन डाक्टर भी घबरा गया। उसका हुक्म हुआ कि मरीज को जेल के अस्पताल में पहुँचाया जाय। डाक्टर की यह आज्ञा सुनकर सुब्बाराव का दिल बैठने लगा। वह सोचने लगा—वहाँ उसे अपने मित्र की मधुर वाणी सुनने को न मिलेगी। जेल के

अस्पताल में जहाँ उसे किसी स्नेही मित्र का एक चेहरा भी दिखाई न देगा वहाँ कैसे रह सकेगा ? उसने अपने मित्र रमैया को ओर देखा, लेकिन रमैया मौन रहा।

"मैं अस्पताल नहीं जाना चाहता"—सुब्बाराव ने विरोध किया।

डाक्टर ने उसे यह कहकर राजी करना चाहा—"आज तुम्हारी बीमारी का छठा दिन है। तुम्हारी परिचर्या होशियारी से होनी चाहिए। तुम्हारे बिना अस्पताल जाये यह संभव न होगी।"

सुब्बाराव ने फिर भी मना किया। इस पर डाक्टर ने चेतावनी दी—"अगर तुम साधारण कैदी होते तो मैं तुम्हें जबरदस्ती अस्पताल भिजवा देता; लेकिन तुम जैसे पढ़े-लिखे आदमी के साथ मैं बल का प्रयोग नहीं करना चाहता। अगर तुम अस्पताल न गए तो तुम्हारे इलाज में निश्चय ही देर लगेगी और मैं किसी अनिष्ट परिणाम के लिए उत्तरदायी न हूँगा।"

जब डाक्टर जाने ही वाला था तो रमैया ने रोककर कहा—"मेरी भी यही राय है। सुब्बाराव ! तीन-चार दिन अस्पताल में रहने में क्या हर्ज है ? मैं तुम्हें अकसर देख आया करूँगा।"

सुब्बाराव को बहुत दुःख हुआ, वह धीमी आवाज में बोला—"अगर मेरे यहाँ रहने से तुम्हें बहुत तकलीफ होती है तो मैं चला जाऊँगा।" यह वाक्य रमैया को ऐसा लगा जैसे मानो किसी ने तेज छुरा भोंक दिया हो। मट्ठे की एक बूँद घड़े भर दूध को खट्टा बनाने के लिये काफी होती है। बहुधा अजान में कहा

हुआ एक ही शब्द पुरानी मित्रता को भग्न करने के लिए पर्याप्त होता है। रमैया का हृदय दुःख और क्रोध से भर गया। क्या उसकी एकनिष्ठ! निष्काम सेवा का यही फल है। उसने डाक्टर से कहा—"दो-तीन दिन और देख लीजिये; न होगा तो उसके बाद अस्पताल पहुँचा देंगे।"

अगले तीन दिनों में दोनों मित्र मानो एक साक्षात् नरक में रहे। सुखाराव का ज्वर और उसके कारण दुर्बलता दोनों बढ़ते ही गए। जब आदमी बीमार होता है तभी उसको स्वास्थ्य का मूल्य मालूम पड़ता है। रोगी अपने चतुर्दिक रहनेवाले स्वस्थ व्यक्तियों से ईर्ष्या किये बिना नहीं रह पाता। वह परिचर्या करने वालों की कठिनाइयों के विषय में भी नहीं सोचता। उसे एक मात्र अपने पीड़ित शरीर का ही ध्यान रहता है। यह सोचकर कि उसका मित्र उसे अस्पताल भेजने के लिये आतुर है उसकी मानसिक पीड़ा ज्वरग्रस्त शरीर के समान ही तीव्र हो गई। यद्यपि वह रमैया से सेवा लेता रहा लेकिन उससे बोला नहीं और न किसी अन्य रूप में उसकी सेवा के प्रति कृतज्ञता का भाव ही प्रकट किया।

अपने मित्र के इस व्यवहार से रमैया को क्रोध आ गया। वह अपने मन से पूछता—मैंने इसका क्या बिगाड़ा है? मैं इसकी उसी तरह सेवा करता रहा हूँ जैसे कोई मा अपने बच्चे की करती है या प्रेमी प्रेमिका की। क्या उसे मेरी कठिनाइयाँ न समझनी चाहिए? वह बच्चा तो है नहीं। अस्पताल में बहुत से कैदी महीनों

से रह रहे हैं; किसी को जरा भी शिकायत नहीं। इस तरह के दुर्बल मस्तिष्क को सत्याग्रही होने से क्या लाभ ?

जब किसी को कोई काम पसन्द होता है तो वह आसानी से हो जाता है और जब किसी काम को मन नहीं चाहता तो हल्का होने पर भी वह एक असह्य भार हो जाता है। इन दो दिनों में रमैया को सुब्बाराव का जो कुछ काम करना पड़ा वह अप्रिय बेगार-सा मालूम हुआ।

आठवें दिन सबेरे जब दरवाजा खुला तो प्रतिदिन की भाँति रमैया अपने मित्र को देखने गया। सुब्बाराव उसके आगमन की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहा था। उसने रमैया का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर जोर से दबाया। बुखार बहुत तेज था और सुब्बा-राव की बात साफ-साफ समझ में न आती थी। रमैया सशंक हो गया। पिछले दो दिनों के अपने परिवर्तित व्यवहार से वह संकुचित होने लगा। वह सोचने लगा—देखो, मैं कितना नीच हूँ ! जब उसे मृत्यु का खतरा है तब मैं उससे नाराज हो गया। मेरी क्षुद्रता का प्रायश्चित किस तपस्या से हो सकता है ! उसने कोमल और मधुर शब्द कहकर सुब्बाराव को तसल्ली दी और फिर डाक्टर साहब के पास दौड़ा गया। परीक्षा करके डाक्टर ने कहा—"यह मियादी बुखार है। उस दिन मैंने तुम्हें आगाह कर दिया था, लेकिन तुम दोनों ने मेरी सलाह नहीं मानी। अब अगर कुछ अनिष्ट हुआ तो तुम्हीं लोग जिम्मेदार होगे।"

रमैया हक्का-बक्का हो गया। उसने प्रार्थना की कि उसे अस्पताल में रहने की आज्ञा प्रदान की जाय। डाक्टर ने कहा—"मुझे इसका अधिकार नहीं है।" रमैया जेल-सुपरिंटेंडेंट के पास पहुँचा। उसने उत्तर दिया—"अभी मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकता। अगर किसी वक्त तुम्हारे दोस्त की हालत खतरनाक होगी तो मैं सोचूँगा।"

सुब्बाराव को तत्काल अस्पताल पहुँचा दिया गया। जो सुब्बाराव और रमैया दोनों को देख रहे थे सोचते थे कि सुब्बाराव से ज्यादा रमैया दुखी है। वह किंकर्तव्यविमूढ़ था—अगर वह सुब्बाराव की पत्नी को तार दे तो भी वह बेचारी लड़की क्या करेगी? वह इतनी दूर कैसे आयेगी? कन्नानोर पहुँचने में तीन दिन लग जायेंगे। और अगर उसके आने से पहले ही सुब्बाराव की हालत नाजुक हो गई तब ..!" इसके आगे के दृश्य की कल्पना करने का उसे साहस ही न हुआ।

दूसरे दिन सवेरे डाक्टर ने उसे बतलाया कि टेम्परेचर थम गया है और अब शीघ्र ही चिन्ता का कोई कारण नहीं है। इससे रमैया को कुछ शान्ति मिली। "यह सब ईश्वर की इच्छा है! मैं स्वयं क्यों घबड़ाऊँ?" उसने अपने मन को समझाया, लेकिन उसका मस्तिष्क अशान्त बना रहा। जब संध्या समय वह अपनी कोठरी में बंद हुआ तो विचारों में डूबा रहा और उत्सुकता से सुबह की प्रतीक्षा करने लगा।

उसके पलक बिलकुल नहीं झपे। जेल-जीवन के खतरे और बेरहमी का उसे अब अनुभव हुआ। वह सोचने लगा—अधिकारी

किसी सीमा तक बंदी के शरीर की तो देखरेख करते हैं, लेकिन उसके मस्तिष्क और आत्मा की बिलकुल अवज्ञा होती है। प्रेम या दया के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। कारावास मानवता नष्ट करने का साधन है। वह मनुष्य को पशु बना देता है। अगर बात ऐसी नहीं है तो उसे उसके रुग्ण मित्र के पास से हटाने की क्या आवश्यकता थी ? ये अधिकारी यह नहीं सोचते कि रोगी के उपचार के लिए केवल औषधि ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए प्रेम और स्नेहमयी सेवा का कम महत्व नहीं है। अगर सुब्बाराव की माँ और उसकी पत्नी को उसकी वर्तमान दशा का पता लग जाय तो उन्हें कितनी पीड़ा होगी। ये लोग कैदियों के लिये एकान्त स्थानों में कुटियाँ क्यों नहीं बना देते जहाँ वे अपने परिवारों के साथ रह और काम कर सकें। यह केवल उचित ही नहीं है, बल्कि उन्हें अपराधी प्रवृत्तियों से छुटकारा दिलाने का एक मात्र उपाय है। अगर उन्हें उपयोगी काम करना तथा उसके द्वारा अपने परिवारों का पालन-पोषण करना आ जाता है तो वे अपराध करना छोड़ सकते हैं। यह हो सकता है कि उनसे कसकर काम लिया जाय और अपेक्षा-कृत मजदूरी भी कम दी जाय; लेकिन अगर इसके बजाय उन्हें वर्षों बन्द करके ताले में रखा जाता है तो वे अपनी मनुष्यता छोड़ कर पशु हो जायेंगे। यदि मामूली कैदियों के सुधार का यही ठीक तरीका है तो फिर उन लोगों को जिन्हें देश-भक्ति या अपने विशिष्ट राजनैतिक विचारों के लिए कारावास का दंड दे दिया गया है इस प्रकार कोठरियों में बंद करके रखना क्या अनावश्यक क्रूरता

नहीं है ? इतिहास से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इस प्रकार के व्यक्ति कारावास में बन्दी होने से अपने विचार बदल देते हैं। वीर पुरुष और नारियाँ दोनों ही कारावास से और भी दृढ़ हो जाते हैं। अगर कुछ कायर दंड के भय से अपने सिद्धान्तों का त्याग करते हैं तो वे भावी समाज के हित के लिए खतरा पैदा करते हैं। मानसिक स्वतंत्रता को भय से दबाने का प्रयत्न जंगलीपन की चरम सीमा है। सब प्रकार की हिंसा का स्वयं त्याग करनेवाले सत्याग्रहियों से क्रूरता का व्यवहार करना मानवता का अपमान है।

जब उसके मस्तिष्क में ये विचार चक्कर मार रहे थे, जेल की घड़ी ने दस बजाए। उसने देखा कि डाक्टर और जेल-सुपरिंटेंडेंट उसकी कोठरी की तरफ बढ़े चले आ रहे हैं।

"तुम्हारे मित्र की दशा चिन्ताजनक है। अगर तुम चाहो तो उसके पास रह सकते हो", जेल-सुपरिंटेंडेंट ने कहा। रमैया चुपचाप उसके पीछे हो लिया। जब वे अस्पताल में सुब्बाराव के वार्ड के निकट पहुँचे तो उसका हृदय इतने जोर से धड़कने लगा कि उसकी आवाज कुछ दूर तक सुनाई देती थी। चाभी-वाले वार्डर को बुलाने तथा दरवाजा खुलवाने में पाँच मिनट लग गये। रमैया को यह अनन्त काल प्रतीत हो रहा था।

सुब्बाराव अचेत था। उस कमरे में ६ और रोगी थे। कुछ सो रहे थे और कुछ दर्द से कराह रहे थे। एकमात्र परिचारक मेहतर का लड़का सो रहा था। जब रमैया को वार्ड में बंद किया

गया तो उसे बतला दिया गया कि अत्यावश्यक होने पर इन्चार्ज वार्डर से वार्ड खुलवा ले और दफ्तर में मेडिकल असिस्टंट को सूचना दे दे।

जेल में किसी ऐसे रोगी बंदी के पास बैठना जो जीवन और मृत्यु के बीच लटक रहा हो एक भयंकर कर्म है। शायद इससे अधिक भयानक दृश्य की कल्पना भी कठिन है। लेकिन मनुष्य का मस्तिष्क एक विचित्र चीज है। रमैया को बिलकुल डर नहीं मालूम हुआ। उसकी चिन्ता शान्त हो गई। उसे सन्तोष हो रहा था कि चिन्ता के इन क्षणों में वह अपने मित्र की रोग-शय्या के समीप पहुँच सका। इस कृपा के लिये वह जेल के अधिकारियों का कृतज्ञ था।

सुब्बाराव अपने मित्र को पहचान न सकता था। उसे सन्निपात हो गया था। वह अंड-बंड बक रहा था—"हट जाओ, हट जाओ। मैं कांग्रेस के अधिवेशन में जा रहा हूँ। बालू, बालू, तेरा सवाल गलत है, किताब पढ़...माँ...माँ...तुम कहाँ हो...।" वह अपने बाल नोचने लगता, पलंग की चादर फेंक देता। रमैया ने उसे एक कम्बल उढ़ा दिया और फिर हर पाँच मिनट पर उसके मुँह में जल के कुछ छींटे डालता रहा।

रात के २ बजे सुब्बाराव की दशा अचानक बिगड़ने लगी। उसने बक-झक बंद कर दी। उसके हाथ-पैर बरफ से ठंढे पड़ गये। उसकी साँस सुनाई न पड़ती थी। रमैया दौड़कर खिड़की पर गया और चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगा, वार्डर, वार्डर, वार्डर—लेकिन

किसी ने कोई उत्तर न दिया। वह लौटकर सुब्बाराव के पास आया, उसके होठ गीले किये और फिर वार्डर को पुकारने के लिये दौड़कर खिड़की पर आ गया। वार्डर को बुलाने में १० मिनट लग गये। उसने वार्डर से कहा—"मेडिकल असिस्टेंट को तुरन्त बुलाओ।" वह आध घंटे बाद आया। उसने सुब्बाराव को देखा, उसका सिर हिलाया-डुलाया, एक इन्जेक्शन दिया और रमैया को यह आदेश देकर चला गया कि वह उसके होठ बराबर तर करता रहे।

कोई दो घंटे बाद सुब्बाराव को होश आ गया। जब उसने रमैया को अपनी चारपाई के पास पाया तो उसके नेत्र प्रेम की एक ऐसी ज्योति से जगमगा उठे कि जिसे रमैया हमेशा याद करता रहा। किसी तरह रात कटी। दूसरे दिन से बुखार उतरने लगा।

राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं से एक शपथ ली जाती है कि आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी जान दे देंगे। इस शपथ पर हस्ताक्षर करते समय कार्यकर्ता को यह विश्वास रहता है कि वह इस प्रकार के आत्म-बलिदान के लिये तैयार है। सामान्यत: यह संभव भी है कि गोली का सामना करने में उसे डर न लगे। लेकिन जेल में बीमार पड़ने और वहाँ मरने के हेतु चरम सीमा के आत्मबल की आवश्यकता होती है। सुब्बाराव इस परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका, लेकिन जो उसे दोष देना चाहते हों उन्हें चाहिए कि वे स्वयं अपने हृदय टटोलें।

▶▶▶

अपराधी वार्डर ▸▸▸

करुप्पैया एकाएक उठा और बिजली के खंभे की तरह सीधा खड़ा हो गया। पाँच मिनट तक वह चुपचाप खड़ा रहा और फिर सदा की भाँति बैठ गया। वह हमारे ब्लाक के दरवाजे पर संतरी का काम कर रहा था। उसका रंग भुजंग काला था। उसके अन्य लक्षण भी आकर्षक न थे। जब कभी केवल उसके नेत्र एक सुप्त तेज से आलोकित हो जाते थे। लेकिन यह जानना सरल न था कि ऐसा दुःख से होता था या क्रोध से। सामान्यतः वह मौन रहता और अपनी ड्यूटी समय की पाबन्दी तथा सतर्कता से देता। जो सत्याग्रही जेल के नियमों के विरुद्ध हमारे ब्लाक में आना-जाना चाहते, उनके मार्ग में वह एक रोड़ा था। इसलिए उनमें से बहुत से उसे नापसन्द करते थे। लेकिन यह सृष्टि का एक मूल सिद्धान्त है कि क्रिया और प्रतिक्रिया एक दूसरे के विपरीत और परिणाम में समान हैं। इसके अनुसार वह मेरी तथा कुछ अन्य साथियों की सहानुभूति का पात्र बन गया।

"करुप्पैया, तुम एकाएक उठकर क्यों खड़े हो गये?"—मैंने पूछा।

उसने जवाब दिया—"मैंने जेलर और सुपरिंटेंडेंट को दूर के कोने से निकलते देखा।"

"तो इससे क्या ? इतनी दूर से वे तो तुम्हें देख नहीं सकते थे। तुम उनसे इतना डरते क्यों हो ?" मैंने प्रश्न किया।

उसने नम्रता से उत्तर दिया—"जेल में हमें हर चीज से डरना चाहिए।"

"तुम्हें किस अपराध में दंड मिला है ?"

"हत्या।"

"जेल के बाहर तुम एक आदमी की हत्या करने में नहीं डरे। यहाँ तुम व्यर्थ ही एक छोटी-सी बात से डर जाते हो। अब ये लोग तुम्हारा क्या कर सकते हैं ?"

"वे मेरे अंक कम कर देंगे। यद्यपि मैंने बड़ी सतर्कता से सद्व्यवहार किया है, लेकिन पूरा वार्डर होने में मुझे पाँच वर्ष लग गए हैं। सामान्यतः दूसरों को यह काम तीन वर्ष में ही मिल जाता है।"

"तुम्हें कितना दंड मिला है ?"

"पहले मुझे २० साल की सजा हुई थी; लेकिन अपील में कम होकर वह १० साल की रह गई है।"

"जब तुम्हें जेल में इतने लम्बे अर्से तक रहना है तो तुम्हें अंकों की चिन्ता क्यों होनी चाहिए ?"

"अगर तुम जेल में पाँच वर्ष रहो तो यह बात तुम्हारी समझ में आ जायगी। अगर मुझे पूर्णांक मिल गये तो सजा डेढ़ साल कम हो जायगी। मुझे घर की याद आती है।"

"बाहर तुम्हारे कौन-कौन संबन्धी हैं?"

"मेरी पत्नी और भाई हैं। एक चचेरे भाई भी।"

"क्या वे कभी तुमसे मिलने आये हैं?"

"जी नहीं। जैसे ही मुझे सजा हुई मेरा तबादला मदुरा से त्रिचनापली को हो गया। फिर महीने भर में ही उन्होंने मेरा तबादला इस जेल को कर दिया। वे इतनी दूर कैसे आ सकते हैं?"

"क्या तुम्हें उनके पत्र मिलते रहते हैं?"

"एक साल पहले तक तो मिलते थे; लेकिन इन पिछले बारह महीनों में एक भी नहीं मिला।"

जब मैंने उसका यह उत्तर सुना तो मुझे उसकी मूर्खता पर चिढ़ मालूम हुई। मैंने कठोरता से पूछा—"जब उन्हें तुम्हारा इतना भी ध्यान नहीं है कि एक पत्र तो लिख दें तो फिर तुम उनसे मिलने के लिये क्यों आतुर हो?"

क्रोध और मूर्खता दोनों का साथ है। सवाल करते ही मुझे अपनी मूर्खता का पता चल गया। करुप्पैया कुछ देर तक मौन रहा। लेकिन मैं यह ताड़ गया कि मेरा प्रश्न उसके तीर की तरह चुभ गया है। उसने गहरी साँस ली और दुखी होकर बोला—"कभी-

कभी मैंने भी तुम्हारे ही समान सोचा है। लेकिन साधारणतया मैं उनसे मिलने के लिये अत्यन्त व्यग्र रहता हूँ। मैं उनकी कठिनाइयाँ कैसे जान सकता हूँ ? मैंने अपना ही जीवन नष्ट नहीं किया, बल्कि उनका भी।"

मैंने खेद प्रकट किया और अपनी कथा सुनाने के लिये उससे निवेदन किया।

क्षमा माँगते हुए उसने प्रारम्भ किया—"मैं बहुत क्रम से तो नहीं सुना सकता, फिर भी चूँकि आप जानना चाहते हैं इसलिये कथा इस प्रकार है :—

मैं मदुरा जिले के कन्नमपट्टी गाँव के एक प्राचीन प्रसिद्ध परिवार का रहनेवाला हूँ। मेरे पिता पेरिया थेवर के एक अकेले भाई थे—पलप्पा थेवर। दोनों के पास आठ-आठ एकड़ जमीन थी जिसकी सिंचाई पेरियर से होती थी। हरएक की आमदनी हजार रुपये साल थी। दोनों में से किसी का परिवार बड़ा न था। हमारे घर में मेरे भाई कुमारप्पा और मैं दो ही बच्चे थे। चाचा के एक ही लड़का था—कमलप्पा। अब मेरी आयु तीस वर्ष है। मेरी पत्नी वीराई के घर में आने के दो वर्ष बाद, आज से १० वर्ष पूर्व मेरी माँ मर गई। वीराई घरबार का प्रबन्ध करने में बड़ी कुशल थी। इसलिये मेरे पिता ने दूसरी शादी नहीं की। जबतक वह जीवित रहे दोनों परिवारों में प्रेम और सौहार्द बना रहा। मेरे चचेरे भाई कमलप्पा और मैं बचपन से ही घनिष्ठ मित्र थे।

पिता जी की मृत्यु के बाद चाचा के व्यवहार में एक परिवर्तन हो गया। हमारे खेत एक दूसरे से मिले हुये थे। उनमें एक खेत बीज का था। गाँव भर में इसकी जमीन सबसे बढ़िया मानी जाती थी। इसमें दोनों का आधा-आधा हिस्सा था। हमारे चाचा हमारा भी हिस्सा हड़पना चाहते थे जिससे कि पूरा खेत उन्हीं का हो जाय।

पिता जी की मृत्यु के समय मैं २४ वर्ष का था और मेरा भाई २० का। मेरे एक लड़का था। जब जमीनों के पट्टे मेरे नाम में तब्दील हुये तो चाचा ने मुझे बुलाया और बोले—"बीज के खेत का अपना हिस्सा तुम हमें लगान पर दे दो।" मैं राजी न हुआ। उस दिन से दोनों परिवार एक दूसरे से खिंचने लगे। कुछ दिन तक तो मेरा चचेरा भाई कमलप्पा मेरा दोस्त बना रहा; लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया वह अपने पिता का पक्ष लेने लगा। मुझे इसमें आश्चर्य न हुआ।

हमारे चाचा धीरे-धीरे लेकिन लगातार हमारे और अपने खेतों का विभाजन करने वाली मेंड़ों को हमारी तरफ खिसकाने लगे। मैंने इसका विरोध किया। लेकिन उन्होंने बलपूर्वक आग्रह किया कि नई मेंड़ ठीक स्थान पर है और मेरे प्रतिवाद को सुना-अनसुना कर दिया। मेरे भाई को गुस्सा आ गया। उसने अपनी कुदाली उठाई, खेत पर पहुँचा और मेंड़ को अपनी पहिली जगह पर कायम करने लगा। जब चाचा को मालूम हुआ तो वे खुद तो न आए लेकिन एक नौकर को यह आदेश देकर भेज दिया कि मेरे भाई को

मेंड़ तोड़ने से रोके और जबरदस्ती उसकी कुदाली छीन ले। इस असह्य अपमान को मैं न सहन कर सका। इसलिये मैंने अपनी कमर में एक तेज चाकू बाँधा, एक दूसरी कुदाली हाथ में ली और मेंड़ को पीछे हटाने में अपने भाई की मदद करने लगा। चूँकि सब लोगों को चाकू साफ दिखाई दे रहा था इसलिये मुझे रोकने का किसी को साहस न हुआ। हम लोगों ने आधा काम समाप्त कर लिया। ६ बजे शाम तक घर लौट आये। हम लोगों के दोनों मकान एक दूसरे से सटे हुये थे, बीच में एक ही दीवार थी। चाचा पलप्पा थेवर अपने मकान के बाहर के बरामदे में बैठे हुये अपने नौकर को उसकी कायरता के लिये बुरा-भला कह रहे थे। जब उन्होंने मुझे आते देखा तो आपे से बाहर हो गये। वह मुझे बुरी तरह गालियाँ देने लगे। यह सुनकर मेरी पत्नी और भाई अपने घर से बाहर निकल आये। चाचा अब उनपर बरसने लगे। उन्होंने पहले मेरे भाई और फिर पत्नी को ऐसी-ऐसी गन्दी गालियाँ दीं कि जिन्हें दोहराने में शर्म आती है। मैं क्रोध से उन्मत्त हो गया। मैं अत्यन्त आवेश में उठ खड़ा हुआ। मेरी पत्नी ने मुझे पकड़ लिया और मेरी कमर से चाकू निकालकर ले गई। मैंने उसे एक तरफ धक्का दे दिया, एक लकड़ी उठाई और चाचा की ओर दौड़ा। उन्होंने भी एक लकड़ी उठाली और मेरे सामने आकर खड़े हो गये। मैं उनपर झपटा और जोर-जोर से चार-पाँच लकड़ियाँ जमा दीं। चोट उनके सिर और गर्दन पर लगी, वह गिर पड़े। भाई और पत्नी मुझे पकड़कर अपने घर में खींच ले गये।

चाचा तीन दिन और जीवित रहे। इस घटना के दूसरे ही दिन कमलप्पा पुलिस में शिकायत करना चाहता था। मेरी पत्नी और भाई ने उसके पैर पकड़ लिये और प्रार्थना की—"उसे माफ करो।" मैं कुछ न बोला। लेकिन चाचा का हृदय दया और पश्चात्ताप से भर गया। उन्होंने अपने लड़के को बुलाया और बोले—"अभागी घटना घट गई। मैंने बिना सोचे-समझे न जाने क्या-क्या कह डाला। अब अगर तुम कचहरी जाते हो तो दोनों कुटुम्ब बरबाद हो जायेंगे। इसलिये तुम सब कुछ भूल जाओ और पहले की ही तरह दोस्त बने रहो।" कमलप्पा को भी मेरी पुरानी मित्रता स्मरण हो आयी और उसने मुझ पर मुकदमा चलाने का विचार त्याग दिया।

लेकिन अपने किये हुए कर्मों के फल से बचना इतना सरल नहीं है। जब चाचा मर गये तो गाँव के मुंसिफ ने दाह-संस्कार रोक दिया और पुलिस को सूचना दे दी। तुरन्त पुलिस आ गयी। उसने लाश की चीर-फाड़ कराकर परीक्षा करवायी और फिर मुकदमा चला दिया। चूँकि झगड़ा बीच सड़क पर हुआ था गवाह आसानी से मिल गये। मेरे भाई ने दो प्रमुख वकील कर लिये। लेकिन सिवाय इसके कि बहुत-सा रुपया खर्च हो गया इससे मेरी कुछ मदद न हो सकी। मैं सेशन सिपुर्द हो गया और वहाँ से २० साल की सजा हो गई। मेरे भाई ने अपील का तुरन्त प्रबन्ध कर लिया। अपील के फैसले में ६ महीने लगे; लेकिन मेरी सजा घटकर दस साल रह गई। इस सब में हमारे ६ हजार रुपये खर्च

हुये। हमारी आठों एकड़ जमीन बिक गयी। वह तो हमारा मकान भी बिक जाता लेकिन मेरे चचेरे भाई ने हम पर दया दिखाकर मकान बचाने के लिये ५०० रुपये की मदद दे दी। अब मेरी पत्नी और भाई उसकी जमीन जोतते हैं और इस तरह अपनी रोजी कमाते हैं।

जब तक अपील चलती रही मैं मदुरा जेल में रहा। उसके खत्म होने पर पत्नी, भाई और चचेरा भाई तीनों मुझसे वहाँ मिलने आये। मैं अपने भाई को कैसे धैर्य बंधाता! मैंने अपने चचेरे भाई से प्रार्थना की कि उनकी मदद करता रहे। मेरा तीन वर्ष का बालक मेरी गोद में आना चाहता था। लेकिन चूँकि हम लोग लोहे की छड़ों के इधर-उधर खड़े थे वह छड़ों में से सिर्फ अपना हाथ अन्दर ले जा सका जिससे उसने मेरे बाल पकड़ लिये और रोने लगा। जेल के जो अधिकारी वहाँ मौजूद थे इस दृश्य पर आँसू बहा रहे थे।

अपनी सजा के प्रथम वर्ष में मुझे मानसिक पीड़ा होती थी, अपने कारण कम लेकिन पत्नी और भाई के गरीब हो जाने के कारण ज्यादा। रात-दिन मुझे यही अफसोस रहता कि देखो जिनका लालन-पालन इतने सुख और शान से हुआ था उन्हें अपनी रोजी कमाने के लिये दूसरे की गुलामी करनी पड़ रही है। इसमे मैं कम बोलता, अपने ही में लीन रहता और किसी से बात न करता। मेरे साथी कैदी कुछ दिन तक तो हँसी उड़ाते रहे; फिर अंत में मुझे सनकी समझ कर चुप हो गये। हर तीन महीने बाद

मुझे घर का एक पत्र मिल जाता। पहला साल समाप्त होने पर मुझे सूचना मिली कि मेरा लड़का चेचक से मर गया। इस समाचार से मैं एक हफ्ते तक लगभग पागल बना रहा। लेकिन यह कहना सत्य न होगा कि मैं शोक से विह्वल था। मैं यह सोचता था कि मजदूरी करके रोजी कमाने से तो यह अच्छा ही हुआ कि वह मर गया। मैं यह नहीं कह सकता कि यह विचार मेरे मस्तिष्क में कैसे आया। एक दिन आधी रात को मेरी नींद खुल गयी। मैंने देखा कि मेरे मन में एक भयंकर आशंका घर कर गई है। मेरी पत्नी ठीक २१ वर्ष की हो गई। मैं यह कैसे आशा कर सकता हूँ कि वह केवल मेरा ध्यान करती हुई आठ वर्ष तक अपना यौवन योंही नष्ट करेगी। अपनी अदम्य प्राकृतिक कामवासना को वह कैसे दबा सकती है? इसके अतिरिक्त वह मुझसे ऐसा प्रेम क्यों करे जिसमें उसे इस लम्बी अवधि तक मेरी शांतिपूर्वक प्रतीक्षा करनी पड़े? इसके स्थान पर क्या यह अधिक स्वाभाविक नहीं है कि उसका जीवन नष्ट करने के कारण वह मुझसे नाराज और उदासीन हो जाय?

दिन-प्रतिदिन यह शंका बढ़ती जाती थी। मैं इसके विषय में जितना अधिक सोचता मेरा दृढ़ विश्वास होता जाता कि यह सत्य है। अब मेरी शंका पत्नी तक ही सीमित न थी; धीरे-धीरे यह भाई के विषय में बढ़ने लगी। उसकी अवस्था मेरी पत्नी के बराबर थी। उसकी शादी होने की कोई संभावना न थी। इन परिस्थितियों में यह कैसे संभव हो सकता है कि वे दोनों दिन-ब-दिन एक साथ एक

ही घर में रहते रहें और प्रकृति अपना काम न करे। यह विचार मुझे इतना घेरे हुए था कि मैं दोनों से घृणा करने लगा।

कल्पना की कोई सीमा नहीं होती। कभी-कभी मैं अपने चचेरे भाई कमलप्पा पर भी शक करने लगता। मुकदमे के दिनों में उसकी कृपा और आर्थिक सहायता का उद्देश्य भी इसी को मानता। वीराई हमारी जाति की सामान्य लड़कियों से अधिक सुन्दर थी। अगर मेरा चचेरा भाई उसकी ओर आकर्षित हो जाय तो इसमें आश्चर्य क्या? मैं सोचता कि हमारे मकान के न बिकने देने में भी उसका कुछ उद्देश्य था। वीराई अपनी इस घोर दरिद्रावस्था में उसके प्रेम का स्वागत क्यों न करे? मेरा मस्तिष्क इन्हीं गन्दे विचारों से भरा हुआ था।

कौन जाने मरने के बाद नरक मिलता है या नहीं। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य संसार मे जीवित रहते हुये भी नरक की यातनाएं भोग सकता है। आत्मा को नष्ट करनेवाली इन शंकाओं के कारण मैं अपने जीवन से घृणा करने लगा। मैं सोचने लगा कि सब स्त्री-पुरुष शैतान होते हैं। कभी तीव्र इच्छा होती थी कि आत्महत्या कर लूं। दूसरा वर्ष समाप्त होने पर मुझे भाई का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

'हमारे गांव को एक भयंकर अकाल ने जकड़ लिया है। बीज देकर भी धान नहीं मिलता। मैं और वीराई दोनों रिलीफ के लिये खोले गये सड़क के काम में मजदूरी कर रहे हैं। दुर्भिक्ष से हम किसी विशेष कष्ट में नहीं हैं। लेकिन जब हम लोग तुम्हारे विषय

में सोचते हैं तो असह्य पीड़ा होती है। तुम्हारी पत्नी हर रात तुम्हारे लिये आठ-आठ आँसू रोती है।'

जब मैंने यह पत्र पढ़ा तो मेरा हृदय दीपशिखा के समीप मोम की तरह पिघल गया। अपनी शंकाओं पर मुझे बड़ी शर्म मालूम होने लगी—'जब मेरे सगे-सम्बन्धी अपनी रोटी के लिये पत्थर फोड़ रहे हैं तब मैं इन दूषित विचारों पर मनन कर रहा हूँ! उनकी यह दुर्दशा कराने के बाद मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं उनके विषय में ऐसी कल्पना करूँ। चाहे कितना भी भयंकर कारण क्यों न हो? कोई हिन्दू पत्नी अपने धर्म को इतनी आसानी से कैसे भुला सकती है? मान लीजिये कि वह गलती करती है तो भी उसका अपराध इतना भयंकर नहीं हो सकता जितना मेरा।' मैंने अपने मस्तिष्क से उन सब शंकाओं को बाहर निकालने की प्रतिज्ञा की।

उस दिन से मेरा मन शांत है; लेकिन भाई और पत्नी से मिलने की उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है। मैं अपने चचेरे भाई से मिलना चाहता हूँ। इच्छा है कि दयापूर्वक उसने उनकी जो कुछ सहायता की है उसके लिये उसे धन्यवाद दूँ। अगर अधिकारियों ने मुझे पूरे अंक दे दिये तो दो वर्ष के बाद मुझे उनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।"

संभवतः समाज के लिये यह आवश्यक है कि अपराधियों को दंड दे; लेकिन यह न भुला देना चाहिये कि बन्दी-जीवन में भी उनकी आत्मा के लिये प्रेम उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के लिये

भोजन । उनकी आत्मा क्षुधित रखना मूर्खता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि प्रेमभाव के कारण, चार-पाच साल जेल में बन्दी रहने के उपरान्त जब कोई अपराधी बाहर निकलता है तो वह स्पंदनशील, सहृदय प्राणी न रह कर केवल दो पैर का जानवर हो जाता है। कैदी वार्डर करुप्पैया के समान अगर कभी कोई अपराधी बरसों जेल में रहने पर भी अपनी मानवीय भावनाओं की रक्षा कर लेता है तो इससे यही सिद्ध होता है कि आत्मा के विनाश का भरसक प्रयत्न होने पर भी कभी-कभी आत्मा की रक्षा हो जाती है।

▶ ▶ ▶

वह तार ▸▸▸

पुरानी शत्रुता मिटाने के लिए रेल-यात्रा एक प्रशंसनीय सरल साधन है। जब बैजवाड़ा स्टेशन पर सीतादेवी और चेलापति रेलगाड़ी में सवार हुए तो दोनों एक दूसरे की तरफ देख रहे थे, लेकिन दोनों में से कोई किसी से बोलता न था। वे दोनों संबंधी थे; लेकिन जब से सीतादेवी के पुत्र कामेश्वरराव ने वकालत शुरू कर दी तब से चेलापति की आमदनी घटने लग गई। चेलापति का कहना था कि कामेश्वर अपनी नीच हरकतों से उसके मुवक्किलों को फोड़ लेता है लेकिन वह उसके इस दोषारोपण को कोई महत्त्व न देता। कामेश्वर अपने आकर्षक व्यक्तित्व, योग्यता और धारा-प्रवाह-भाषण के बल पर पाँच ही वर्ष में बैजवाड़ा के वकीलों में सर्वोपरि हो गया। पिछले साल उसने चेलापति को राजनैतिक क्षेत्र में भी अपने पद से हटा दिया। गोखले के समय चेलापति उदार दल में था। गाँधी-युग में भी वह उदार बना रहा। वह खादी कभी-ही-कभी पहनता। वह सत्याग्रह आन्दोलन में स्वयं सम्मिलित न होता किन्तु जब जेल से छूटकर आनेवाले देश-सेवकों के सम्मान में स्वागत-समारोह होता तो उसमें वह क्रियात्मक भाग

लेता। उसे निश्चित आशा थी कि इन सेवाओं के परिणाम-स्वरूप उसे नगरपालिका के चुनाव में कांग्रेस-टिकट अवश्य मिलेगा; लेकिन चुनाव-कमेटी ने उसका आवेदन-पत्र खारिज कर दिया और मनोनीत-पत्र दाखिल होने के दो दिन पहले कामेश्वरराव को कांग्रेसी उम्मेदवार घोषित कर दिया। इस घटना से दोनों परिवारों में पूर्णतः संबंध-विच्छेद हो गया, यहाँ तक कि आपस में बोलचाल भी बंद हो गई।

एक घंटा साथ बैठने के बाद दोनों यात्रियों के बीच की शत्रुता अचानक विलुप्त हो गई मानो किसी ने जादू कर दिया हो। पहले चेलापतिराव ने मौन भंग किया।

"बहिन! जब तुम्हारा लड़का जेल में है तो तुम तीर्थयात्रा करने क्यों जा रही हो?"—उसने पूछा।

सीतादेवी ने जवाब दिया—"बहू खुद भी सत्याग्रह में जाना चाहती थी और कहती थी कि मैं बच्चों की देखभाल करूँ। मैं चाहती हूँ कि वह जल्दी में कोई ऐसा काम न कर बैठे। इसलिए इस यात्रा के लिए निकल पड़ी हूँ।"

चेलापति ने उपदेश के ढंग पर कहा—"जमाना बड़ा खराब आ गया है। मर्द-औरत का अन्तर भी मिटता जा रहा है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि जाति और धर्म सब जल्दी ही मिट जायँगे।"

मदरास पहुँचकर राममोहन तीर्थयात्रा गाड़ी में बैठते तक वे ऐसे हो गये जैसे एक ही परिवार के दो सदस्य साथ-साथ यात्रा

कर रहे हों। सीतादेवी के पास पाँच सौ रुपये थे। चेलापति का अधिकांश खर्च वही बरदाश्त करती। वह पुनर्जीवित मित्रता उसके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। लेकिन इस दुनिया में बिना कुछ दिये सब कुछ पा जाना बहुत कम सम्भव होता है। सीतादेवी के हृदय में अपने पुत्र के प्रति अपार स्नेह था। वह उसकी सज्जनता, योग्यता तथा अन्य गुणों की निरंतर प्रशंसा करती रहती। यह चेलापति के कान को बहुत अप्रिय लगता। वह ईर्ष्या से भुनता, उबलता रहता। उसे तब विशेष रूप से बुरा लगता जब सीतादेवी बड़ी शान से वर्णन करने लगती कि उसका पुत्र दूसरे वकीलों के मुवक्किलों को कैसे आकर्षित कर लेता है और फिर वे उसी के हो जाते हैं। सीतादेवी अपने पुत्र के गुणगान में इतनी लीन हो जाती कि उसे यह ध्यान ही न रहता कि उसके साथी-यात्री चेलापति की इस पर क्या प्रतिक्रिया होती होगी। अन्य स्नेहमयी माताओं के समान वह सोचती थी कि सारे संसार को उसके सुपुत्र के गुणों का अनुकरण करने के लिए उत्सुक होना चाहिए। जब कभी वह इस विषय में कोई नई बात शुरू करना चाहती तो चेलापति वार्तालाप को सास-बहू के संबंध पर लाकर मोड़ देना चाहता। इससे सीतादेवी की मुख-मुद्रा तुरन्त मलिन हो जाती। लेकिन एक बार स्वयम् सीतादेवी ने लम्बी साँस खींच कर कहा—"मेरे जमाने में स्त्रियाँ पति की ईश्वर की तरह पूजा करती थीं, लेकिन आजकल पति स्वयं पत्नी की पूजा करता है। कामेश्वर में यही दोष है। कलियुग का प्रभाव है! ऐसा नहीं है

कि यह दोष सिर्फ मेरे ही बेटे का हो। सत्य बात यह है कि वैसे पार्वती अच्छी लड़की है; लेकिन आजकल जो यह कांग्रेसियों का राजनैतिक पागलपन सब जगह फैला हुआ है उसका असर उस पर भी पड़ गया है और मीटिंग, चरखा वगैरह ऐसी ही बेवकूफियों के पीछे पागल बनी रहती है। वह तो कहती थी कि कामेश्वर से भी पहले वह सत्याग्रह करेगी। यह तो तब है जब मैंने इस तीर्थयात्रा के संकल्प की घोषणा कर दी कि उसने कामेश्वर को पहले जाने दिया।"

अंत में यात्रियों का दल बनारस पहुँचा। स्पेशल वहाँ तीन दिन तक खड़ी रही। इन दिनों के लिए चेलापति और सीतादेवी ने एक ताँगा कर लिया। उन्होंने सब घाटों पर स्नान किया और सब मंदिरों के दर्शन किये। जब जगह-जगह रमणीय दृश्यों को देखकर सीतादेवी चमत्कृत हो जाती तो उसे अपने लड़के का ध्यान आ जाता और वह उसके विषय में बातें करने लगती। इस पर चेलापति उस तरफ से मुँह फेर लेता, दाँत पीसता और फिर शान्त हो जाता।

अंतिम सन्ध्या को वे एक नाव में बैठकर उस पवित्र नगरी की सीमा पर प्रवाहित पुण्य-सलिला भागीरथी के रमणीक दृश्य का आनंद लेने के लिए निकले। गगनचुम्बी भवन और रमणीक घाटों को देखकर वे हर्षोत्फुल्ल हो गये। सीतादेवी जोर-जोर से अफसोस मनाने लगी कि इस सौन्दर्य को देखने तथा हर्ष मनाने के लिए वह अपने लड़के को साथ न ला सकी। नाव से उतर

कर वे दोनों एक ताँगे में स्टेशन पहुँच गये। चेलापति ने सीतादेवी को गाड़ी के डिब्बे में बिठा दिया और खुद यह कहकर कि उसे बाजार से कुछ सामान खरीदना है शहर लौट गया। पहले वह सीधा डाकखाना पहुँचा और दो तार दिये। फिर कुछ चीजें खरीदकर वह स्टेशन लौट गया। उसी रात स्पेशल गया के लिए रवाना हो गई।

◀▶

सन् १९४१ में मदरास के वे सब सत्याग्रही जिन्हें प्रथम या द्वितीय श्रेणी मिली थी त्रिचनापली में एक कैम्प-जेल में रखे गये। उनकी कैद का वातावरण ऐसा सुखद था कि जिस पर किसी को मुश्किल से विश्वास होगा। पहले आन्दोलन में कारावास यथार्थ में एक दंड था। अधिकांश बन्दी सोचते थे कि वे जन्म-जन्मान्तर के पापों का परिणाम भोग रहे हैं; उन्होंने कानून भंग किया तो उसका कठिन कठोर दंड पाया। लेकिन यहाँ न पाप के कुफल का प्रश्न था और न किसी अपराध के दंड का। यह तो ऐसा था जैसे शरीर-रहित आत्माएँ स्वर्ग-नरक प्राप्त करने के पूर्व अपने पूर्वजों के महालोक में तैयारी का समय व्यतीत कर रही हों। वे हर प्रकार के प्रतिबन्ध से मुक्त थे। रात को भी उनकी कोई निगरानी न होती थी। उनको ताले में भी बन्द न किया जाता था।

महीने के पहले दिन, शुक्ल पक्ष की द्वितीया को, एकादशी को जब हिन्दू-धर्म के अनुसार उपवास करना होता है, और इनके

अलावा जब जो भी मौका मिलता दावत होतीं। यह नहीं कि बन्दी रोज-रोज दावतें चाहते थे; बल्कि अपनी-अपनी बारी से दावत करना इज्जत का सवाल हो गया था। बहुत से लोग प्राचीन महाकाव्य रामायण और महाभारत का परायण करते। कुछ लोग सुबह से लेकर काफी रात तक ताश खेलते रहते। कुछ ऐसे भी थे जो राजनीति की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर विचार-विनिमय करना चाहते। लेकिन इसको नेता लोग यह कहकर टाल देते—हटाओ भी यह वाद-विवाद। जेल में आने के पहले वही करते थे और अब भी वही!

इन मस्त लोगों के बीच में कामेश्वरराव का आगमन ऐसे ही था जैसे छोटे-छोटे नक्षत्रों के बीच में कोई बड़ा ग्रह चमक गया हो। वह प्रातःकाल ५ बजे सोकर उठ जाता और फिर उस घड़ी से लेकर रात के ११ बजे तक जब वह सोता दिन-रात इधर से उधर और उधर से इधर निरन्तर काम में लगा ही रहता, कभी पाँच मिनट एक जगह नहीं रुकता मानो वह हर जगह मौजूद हो। हर वक्त उसके ओठों पर मुस्कान नृत्य करती रहती। जब किसी को किसी चीज की जरूरत पड़ती तो वह झट से कामेश्वर राव के पास दौड़ जाता और कभी निराश न लौटता। अगर जेल के अधिकारियों से कुछ काम कराना होता तो उसी की मार्फत होता। अगर ऊपर ही ऊपर कोई काम कराना होता तो उसमें भी वह कम दक्ष न था। वह खुद बहुत पढ़ता न था लेकिन उसका निजी पुस्तकालय इतना संपन्न था कि शायद ही कोई राजनैतिक

बन्दी ऐसा हो जो उससे किताबें उधार न लेता हो। वह पेटू न था लेकिन जिसे स्वादिष्ट पदार्थ खाने होते वह नित्य उसके पास पहुँचता। फल, पान-सुपारी, तम्बाकू, सिगरेट, इत्यादि इन त्यागी सत्याग्रहियों को जिस चीज की जरूरत होती, वह सदैव उपलब्ध कर देता। यद्यपि यह कोई नहीं जानता था कि यह सब संभव कैसे होता था, परन्तु ऐसा कभी कोई मौका नहीं आया जब किसी ने उससे कुछ माँगा हो और उसने सखेद असमर्थता प्रकट की हो। यह उसकी प्रथम जेल-यात्रा थी लेकिन वह एक ही महीने में जेल-जीवन के रहस्य तथा परम्पराओं को खूब समझ गया। उसकी असाधारण क्षमता का यह एक जाज्वल्यमान प्रमाण है कि यद्यपि वह किस्तना जिले का रहनेवाला था लेकिन पड़ोसी गंतूर जिले के सत्याग्रहियों के लिए, जो आंध्रदेश के गुणों पर अपना एकाधिकार मानते हैं, आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था।

जैसा कि सर्वविदित है, देवता ईर्ष्यालु होते हैं। वे यह कैसे सहन कर सकते थे कि जेल-जीवन स्वर्गिक आनन्द में परिणत हो जाय। तैलगू नव-वर्ष का पहला दिन था। पिछले दिन रात भर कामेश्वरराव अपने १८ साथियों को लेकर एक बड़ी भारी दावत की व्यवस्था करता रहा। वे तमिल-भाषियों को उन्हीं के देश में यह दिखला देना चाहते थे कि तैलगू-भाषी आंध्र उनसे कितने अधिक उदार और श्रेष्ठ हैं। वे ३२ प्रकार के व्यंजन बना रहे थे। मध्याह्न में दावत शुरू हुई। कामेश्वरराव परोसवाई करा रहा था। बीच में ही जब वह हलुआ परोस रहा था तो एक

मुसलमान वार्डर दौड़ा-दौड़ा चिल्लाता चला आ रहा था—कामेश्वर का तार आया है। कामेश्वर ने हलुए की बाल्टी किसी दूसरे के हाथ में दे दी और स्वयं तार लेकर पढ़ने लगा। फिर उसने उसे शान्ति से मोड़कर जेब में रख लिया और पूर्ववत् परोसने में लग गया जैसे मानो कुछ हुआ ही न हो। भोजन करनेवाले उत्सुकता से पूछ रहे थे—"तार में क्या लिखा है? क्या बात है? कोई चिन्ता की बात तो नहीं है?" उत्तर में उसने केवल यही कहा—"कोई खास बात नहीं है।"

वास्तव में तार में लिखा था—"तुम्हारी माता सीतादेवी का आज सुबह देहान्त हो गया और विष्णुघाट पर उनका दाह-संस्कार कर दिया गया।

—सुब्बाराव

देखने से मालूम होता था कि तार पिछले दिन संध्या समय बनारस में दिया गया था और उस दिन सबेरे १० बजे त्रिचनापली पहुँचा था। बाँटने में २ घंटे और लग गये। वह बार-बार सोचता कि यह तार देनेवाला सुब्बाराव कौन है, लेकिन उसकी समझ में यह न आता कि बनारस में सुब्बाराव नाम का ऐसा कौन व्यक्ति हो सकता है जो उसे इस प्रकार तार दे। उसने सोचा—संभव है यात्री स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध करने वाली राममोहन कम्पनी का कोई क्लर्क हो; लेकिन आज स्पेशल कहाँ होगी, कौन जाने? उसने अपने मित्रों से सलाह ली। एक ने कहा—कांग्रेस-कमेटी, बनारस को तार देकर पता लगाया जाय। दूसरे की राय थी कि किसी को

बैजवाड़ा से बनारस भेजकर सही-सही बात का पता लगाना ज्यादा अच्छा होगा। जब वे इन भिन्न-भिन्न सुझावों पर विचार-विमर्श कर रहे थे, कामेश्वरराव को अपनी पत्नी का भी एक तार मिला। उसमें लिखा था—"बनारस से एक तार द्वारा माता जी के वहाँ निधन की सूचना मिली है। आदेश दीजिए, अब क्या किया जाय ?" दूसरा तार मिलने के बाद सीतादेवी की मृत्यु के सम्बन्ध में कोई संदेह न रह गया और इसलिए अधिक पता लगाने का विचार अनावश्यक समझकर छोड़ दिया गया।

कामेश्वरराव अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था। वह अपनी माँ से बहुत प्रेम मानता था। १० साल से वह उसके पीछे पड़ी थी कि किसी तरह उसे बनारस दिखा दे। प्रतिवर्ष वह उसे कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर साथ ले जाने की योजना बनाता लेकिन अंतिम घड़ी में किसी न किसी कारण से उसे अपना विचार त्याग देना पड़ता और फिर वह प्रस्ताव अगले साल के लिए टल जाता। अब यह सोच-सोच कर उसे किसी तरह धैर्य न बँधता था कि यद्यपि उसके पास १ लाख की जायदाद है, १०००) माहवार की वकालत है, लेकिन उसकी बेचारी माँ को दूर-देश में अकेले मरना पड़ा और उसका दाह-संस्कार भी किसी अपरिचित अजनवी ने किया। जेल के सब राजनैतिक बंदियों ने उसके शोक में शोक मनाया। उसे ६ मास की सजा हुई थी। सामान्यत: मिलने वाली छूट के दिनों को कम कर देने पर भी उसके छूटने में ३८ दिन की देरी थी। उन बंदियों ने सुपरिंटेंडेंट को घेरकर

अनुरोध किया कि वे अपने अधिकार से जितनी अधिक से अधिक छूट दे सकें कामेश्वरराव को अवश्य दें। जेल में किसी ने कोई साँप मारा था। उसने सुपरिंटिंडेंट से प्रार्थना की कि उसका श्रेय कामेश्वरराव को दिया जाय। चौके के काम के लिए २५ दिन और सद्व्यवहार के लिए ५ दिन, इस तरह से उसे ३० दिन की और विशेष छूट मंजूर की गयी। इन सब उपायों से ३० दिन तो कम हो गये लेकिन शेष ८ दिन उसे ८ वर्ष से भी ज्यादा बड़े मालूम पड़ते थे।

◆

रिहाई के वक्त जेल के फाटक पर उसके चारों तरफ संवाद-दाताओं की भीड़ इकट्ठी हो गयी। सब ने उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की और अपने-अपने अखबारों को इस आशय का समाचार भेजा—"बैजवाड़ा के प्रमुख वकील और सत्याग्रही कामेश्वरराव आज जेल से मुक्त हो गये। अपनी माता के बनारस में देहान्त हो जाने से वे विशेष दुखी दिखाई दे रहे थे। आज शाम को वे मेल ट्रेन से मद्रास के लिये रवाना हो रहे हैं।"

इस समाचार को पढ़कर कामेश्वर के मित्र मद्रास के एगमोर स्टेशन पर उसके स्वागतार्थ इकट्ठे हो गये। वह बैरिस्टर पुरुषोत्तम राव की कार में बैठकर सीधा राममोहन एंड कम्पनी के दफ्तर में पहुँचा। मैनेजर को स्पेशल के विषय में इसके सिवाय कोई सूचना न थी कि गाड़ी दूसरे दिन शाम को बैजवाड़ा पहुँच जायगी।

उसी रात वह कलकत्ता मेल में बैठकर सबेरे अपने घर बैजवाड़ा पहुँच गया। उसकी पत्नी पार्वती अत्यन्त शोकाकुल थी। पड़ोसियों की सलाह से उसने बनारस के विभिन्न आदमियों को जो तार दिये थे उसने उसे वे सब दिखलाये।

स्पेशल शाम को ६ बजे बैजवाड़ा पहुँची। कामेश्वरराव और उसकी पत्नी पार्वती प्लेटफार्म पर मौजूद थे। जैसे ही गाड़ी रुकी उन्होंने देखा कि सीतादेवी उनके सामनेवाले डिब्बे में खिड़की के पास बैठी हुई है। चेलापतिराव उसी के समीप बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था। ज्योंही उसने अपने पुत्र और पुत्रबधू को देखा, वह विस्मय से बोली—कामेश, तुम यहाँ कैसे !

कामेश्वरराव और उसकी पत्नी आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने चेलापतिराव की ओर देखा। उसे देखते ही कामेश्वरराव के मन में एक अस्पष्ट संदेह उत्पन्न हो गया। चेलापतिराव इसे ताड़ गया और शरारत से बोला—"भाई कामेश्वरराव! अखबारों में प्रकाशित इस स्तब्धकारी समाचार का आधार क्या है? मैंने तो आज सुबह ही पढ़ा है। मैंने तुम्हारी माँ को नहीं बताया जिससे उनके मन को धक्का न लगे।"

दूसरे दिन सूर्यनारायण को त्रिचनापली जेल में यह तार मिला—"कल शाम माँ सकुशल लौट आई। बनारस के तार में एक संबंधी की शरारत का सन्देह है।"

इससे सत्याग्रहियों में एक भारी विवाद शुरू हो गया। कुछ